अगस्त, 2020
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी, वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2020 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2020 अंक - 8

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

सत्यमेव जयते
विधि साहित्य प्रकाशन

(2020) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ⟹ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से हमने आपके अवलोकनार्थ माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 9 जनवरी, 2020 को निर्णीत **मसरुर अहमद और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य,** (2020) 2 सि. नि. प. 168 वाले मामले में पारित निर्णय को प्रस्तुत किया है । इस निर्णय के माध्यम से माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन प्रत्याभूत वाक् और अभिव्यक्ति का अधिकार अनिर्बंधित अधिकार नहीं है और कोई व्यक्ति लाउडस्पीकरों की सहायता से अपनी वाक् ध्वनि को विस्तारित किए जाने के द्वारा इस अधिकार का दावा नहीं कर सकता, चूंकि संविधान के ही अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्येक नागरिक को यह मूल अधिकार प्रत्याभूत है कि वह अपने घर में शांति, सुविधा, सुरक्षा और निज़ता के साथ निवास करे । इसी निर्णय में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **फरद के. वाडिया** बनाम **भारत संघ और अन्य,** (2009) 2 एस. सी. सी. 442 वाले मामले को निर्दिष्ट किया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह मताभिव्यक्ति की गई है कि शांति की आवश्यकता, निद्रा की आवश्यकता, निद्रा और विश्राम के दौरान प्रक्रिया जैविक आवश्यकताएं होती हैं और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं और यह आवश्यकताएं मानवाधिकार के भाग हैं, चूंकि ध्वनि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है, आज इस बात को वैश्विक रूप से स्वीकार किया जाता है कि ध्वनि मानव स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित

करती है और इसके कारण सुनने की क्षमता की हानि होती है, जिसके परिणामस्वरूप बहरापन, उच्च रक्तचाप, अवसाद, थकान और यहां तक कि चिड़चिड़ापन भी होता है, आवश्यकता से अधिक ध्वनि के परिणामस्वरूप हृदय संबंधी रोग, मानसिक रोग और घबराहट जैसे रोग बढ़ रहे हैं । माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **प्रभू,** (1994) 2 एस. सी. सी. 481 वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए यह मताभिव्यक्ति भी की कि न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या मध्यक्षेप करने से समाज में संतुलन स्थापित होगा या मध्यक्षेप करने से इनकार करने से । इसी प्रकार माननीय उच्च न्यायालय ने **रितेश तिवारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य,** ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3823 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए अभिनिर्धारित किया कि साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग आपसी सद्भाव को प्रोन्नत किए जाने और व्यापक लोकहित में किया जाना चाहिए ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2020

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
गोपाल चड्ढ़ा **बनाम** प्रेम कुमार चड्ढ़ा और अन्य	127
प्रबंध समिति, किसान माध्यमिक महाविद्यालय, अजौसी, जिला जौनपुर द्वारा प्रबंधक और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	147
मसरुर अहमद और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	168
राजीव कुमार और एक अन्य **बनाम** प्रहलाद और अन्य	238
राम प्रकाश चौधरी **बनाम** राजेन्द्र कुमार चौधरी और एक अन्य	245
सुजाता गांधी **बनाम** एस. बी. गांधी	182

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2014 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 24

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन का संदाय) अधिनियम, 1972

– धारा 21 [सपठित राष्ट्रीय इलेक्ट्रानिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी संस्था (एन. आई. ई. एल. आई. टी.) द्वारा संचालित कंप्यूटर अवधारणा पाठ्यक्रम प्रमाणपत्र (सी. सी. सी. प्रमाणपत्र) योजना] – अभ्यर्थी को प्रोन्नति के लिए सरकारी आदेश में उल्लिखित अपेक्षित अर्हता का धारक पाया जाना – अभ्यर्थी प्रोन्नति का हकदार है और उसे प्रोन्नति प्रदान किए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

प्रबंध समिति, किसान माध्यमिक विद्यालय, अजौसी, जिला जौनपुर द्वारा प्रबंधक और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 147

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43)

– धारा 2(ध) और 17 [सपठित हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-क) और 13(1)(ii) और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1 नियम 3, 9, 10 और 10(2)] – साझी गृहस्थी – यह कहना गलत है कि अपीलार्थी-पुत्रवधू ने जिस वैवाहिक घर में विवाह के पश्चात् प्रवेश किया, वह मकान साझी गृहस्थी का भाग है और उसको पुत्र के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना वैवाहिक घर से निष्कासित नहीं किया जा सकता – साझी गृहस्थी की परिभाषा, को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी-पुत्रवधू को पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् वैवाहिक घर के प्रथम तल पर निवास कर रही थी,

पृष्ठ संख्या

के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित किया जा सकता है ।

सुजाता गांधी बनाम **एस. बी. गांधी** 182

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 (1986 का 29)

– धारा 25, 6(2) और 3(2) [ध्वनि प्रदूषण (विनियम और नियंत्रण) नियम, 2000 का नियम 5(1)] – हॉर्न, ध्वनि निष्कासित करने वाले उपकरणों, लाउडस्पीकरों और जनता को संबोधित करने वाली प्रणाली के प्रयोग पर निर्बंधन – किसी भी प्रकार के ध्वनि विस्तारक यंत्र का प्रयोग सक्षम प्राधिकारी से लिखित अनुज्ञा प्राप्त किए बिना नहीं किया जा सकता ।

मसरुर अहमद और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 168

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– धारा 5 – विहित प्राधिकारी द्वारा बिना पर्याप्त स्पष्टीकरण के विलंब क्षमा किया जाना – चकबंदी अधिकारी द्वारा अभिनिर्धारित किया जाना कि प्रत्यर्थियों को चकबंदी के क्रियान्वयन की जानकारी थी और उन्होंने कुछ अन्य भूखंडों के बाबत, सिवाय विवादित भूखंड के, चक आबंटन के संबंध में उच्च न्यायालय तक मुकदमेबाजी भी की थी – प्रत्यर्थी चकबंदी समिति का सदस्य था और उस नाते चकबंदी क्रियान्वयन के बारे में जानकारी का होना पाया जाना – आक्षेप फाइल किए जाने में असामान्य रूप से कारित 24 वर्ष के विलंब पर्याप्त स्पष्टीकरण के अभाव में क्षमा नहीं किया जा सकता ।

गोपाल चड्ढ़ा बनाम **प्रेम कुमार चड्ढ़ा और अन्य** 127

पृष्ठ संख्या

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26)

– धारा 8 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7, नियम 11] – जहां पक्षकारों के मध्य विवाद साझेदारी के खातों के हिसाब-किताब से सम्बन्धित हो या साक्षेदारी विलेख के माध्यस्थम् खंड के अनुसार अन्य कोई अनुतोष चाहा गया हो, वहां माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 8 के प्रावधान अवश्य लागू होंगे – किन्तु यदि बैंक को भेजे गए पत्र द्वारा कैश-क्रेडिट खाते का ऑपरेशन पुन: चालू किए जाने का अनुतोष चाहा गया, तो मामला सिविल न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत आता है ।

राम प्रकाश चौधरी बनाम **राजेन्द्र कुमार चौधरी और एक अन्य** 245

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 1, नियम 3 – प्रतिवादियों के रूप में कौन संयोजित किए जा सकेंगे – इस अनुतोष की ईप्सा किया जाना निरर्थक और विधिविरुद्ध होगा कि पुत्र, जो वैवाहिक घर में निवास नहीं करता, को उसकी पत्नी के विरुद्ध फाइल किए गए निष्कासन वाद में अनिवार्यत: पक्ष बनाया जाना चाहिए ।

सुजाता गांधी बनाम **एस. बी. गांधी** 182

– आदेश 1, नियम 9 – पक्षों का कुसंयोजन और असंयोजन – किसी वाद को किसी पक्ष के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ, यह साबित किया जाना चाहिए कि पक्ष, जिसे वाद में पक्ष नहीं बनाया गया है, वाद का आवश्यक पक्ष है, जिसकी

पृष्ठ संख्या

उपस्थिति के बिना वाद में निर्णय नहीं किया जा सकता ।

सुजाता गांधी बनाम **एस. बी. गांधी** 182

– आदेश 1, नियम 10(2) – न्यायालय पक्षकारों के नाम काट सकेगा या जोड़ सकेगा – यह वादी के विवेक पर निर्भर होता है कि वह वाद में किसी व्यक्ति को पक्ष के रूप में संयोजित करे या प्रतिवादियों के रूप में सम्मिलित करे – यह केवल नियम 10(2) के उपबंध के अधीन है कि न्यायालय द्वारा इस विशेषाधिकार का प्रयोग या तो पक्षों द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर किया जाए या न्यायालय द्वारा वाद का आवश्यक या उचित पक्ष प्रतीत किए जाने पर स्वप्रेरणा से – किसी पक्ष को आवश्यक पक्ष अभिनिर्धारित किए जाने की अपेक्षाएं कठोर प्रकृति की होती हैं और कोई आवश्यक पक्ष वह व्यक्ति होता है जिसको न्यायालय द्वारा पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाना होता है और जिसकी अनुपस्थिति में प्रभावी डिक्री पारित नहीं की जा सकती ।

सुजाता गांधी बनाम **एस. बी. गांधी** 182

– आदेश 41, नियम 27, 28 और 29 – अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य का पेश किया जाना, अतिरिक्त साक्ष्य लेने की रीति और उन विषय बिंदुओं को परिभाषित और लेखबद्ध किया जाना, जिन तक साक्ष्य को सीमित रखा जाना है – यदि अपील न्यायालय अपील के प्रक्रम पर किसी भी पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को अभिलेख पर मंजूर करता है, तो उसके द्वारा नियम 28 और 29 में विहित प्रक्रिया का पालन किया जाना अनिवार्य होगा – यदि अपील न्यायालय द्वारा नियम 28 और 29 के अधीन यथाविहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता तो अतिरिक्त

पृष्ठ संख्या

साक्ष्य के आधार पर पारित डिक्री और आदेश अपास्त किए जाने योग्य होंगे ।

राजीव कुमार और एक अन्य बनाम **प्रहलाद और अन्य** 238

(2020) 2 सि. नि. प. 127 इलाहाबाद

गोपाल चड्ढ़ा

बनाम

प्रेम कुमार चड्ढ़ा और अन्य

(2014 की रिट याचिका संख्या 26803)

तारीख 17 सितंबर, 2019

न्यायमूर्ति राजीव जोशी

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 5 – विहित प्राधिकारी द्वारा बिना पर्याप्त स्पष्टीकरण के विलंब क्षमा किया जाना – चकबंदी अधिकारी द्वारा अभिनिर्धारित किया जाना कि प्रत्यर्थियों को चकबंदी के क्रियान्वयन की जानकारी थी और उन्होंने कुछ अन्य भूखंडों के बाबत, सिवाय विवादित भूखंड के, चक आबंटन के संबंध में उच्च न्यायालय तक मुकदमेबाजी भी की थी – प्रत्यर्थी चकबंदी समिति का सदस्य था और उस नाते चकबंदी क्रियान्वयन के बारे में जानकारी का होना पाया जाना – आक्षेप फाइल किए जाने में असामान्य रूप से कारित 24 वर्ष के विलंब पर्याप्त स्पष्टीकरण के अभाव में क्षमा नहीं किया जा सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि विवाद जिला इलाहाबाद के परगना और तहसील सोराओं के ग्राम खनीनार में स्थित भूखंड संख्या 97, जिसका क्षेत्रफल 6 बीघा 4 बिस्वा और 19 धूर है, से संबंधित है । इस ग्राम में वर्ष 1956-57 में चकबंदी की गई थी और अंतिम अभिलेख कृष्ण चंद्र कौर, शरद चंद्र कौर, संदीप कुमार, सीमा कौर, कृष्ण चंद्र के पुत्र प्रदीप कौर और कुमारी मुखला कौर के नाम में तैयार किए गए थे और वे सभी भूमिधर हो गए और इन लोगों को भूमि का कब्जा प्राप्त हो गया । भूखंड संख्या 44, 71, 75, 97 और 100 (कुल क्षेत्रफल 51 बीघा, 13 बिस्वा और 9 बिसवांसी) वाली भूमि को उपरोक्त व्यक्तियों ने

शिव प्रसाद चड्ढ़ा, प्रेम कुमार चड्ढ़ा और गोपाल चड्ढ़ा नामक व्यक्तियों के पक्ष में वर्ष 1981-82 में विक्रय विलेख द्वारा अंतरित कर दिया और इस प्रकार इन तीनों व्यक्तियों में से प्रत्येक को पूर्वोक्त पांच भूखंडों में एक तिहाई अंश प्राप्त हो गया । तत्पश्चात्, द्वितीय चकबंदी आरंभ हुई और 1953 के उत्तर प्रदेश चकबंदी और भूधृति अधिनियम की धारा 4(2) के अधीन वर्ष 1981-82 में अधिसूचना जारी की गई और इस अधिनियम की धारा 9 के अधीन अधिसूचना तारीख 31 अक्तूबर, 1984 को संप्रकाशित कर दी गई । इस अधिनियम की धारा 20 के अधीन अंतरिम चकबंदी योजना तारीख 20 मार्च, 1986 को संप्रकाशित की गई । अभिलेखों से यह भी दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा ने अधिनियम की धारा 9-क (2) और साथ ही धारा 20 के अधीन भूखंड संख्या 75/1 और चक संख्या 50 के संबंध में भुलई (तृतीय पक्ष) नामक व्यक्ति के विरुद्ध आक्षेप फाइल किए । इन दोनों ही आक्षेपों का संबंध विवादित भूखंड संख्या 97 से नहीं था, प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा फाइल किए गए इन आक्षेपों पर चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा आदेश पारित किए गए जिनको अंततः प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा 1993 की रिट याचिका संख्या 14265 (प्रेम कुमार चड्ढ़ा बनाम चकबंदी उप निदेशक, इलाहाबाद और अन्य) में चुनौती दी गई और उक्त रिट याचिका बाद में खारिज हो गई । उक्त रिट याचिका में चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में याचियों की बेदखली को स्थगित करते हुए अंतरिम आदेश पारित किया गया । रिट याचिका के खारिज हो जाने के पश्चात् भूमि के चकों का कब्जा दिया जाना आरंभ किया गया जिसको 15 मई, 2008 से 27 जून, 2008 के मध्य अभिलिखित किया गया । प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा और राजेश कुमार चड्ढ़ा द्वारा अधिनियम की धारा 9-ख और साथ ही धारा 20 के अधीन तारीख 16 जुलाई, 2008 और 12 जुलाई, 2008 को पृथक्-पृथक् आक्षेप यह मांग करते हुए फाइल किए गए कि भूखंड संख्या 97 वाली भूमि को इस आधार पर चकबंदी के बाहर रखा जाए कि यह सड़क मार्ग के किनारे वाली भूमि है । उक्त आक्षेपों को अधिनियम की धारा 9 के अधीन जारी अधिसूचना के संप्रकाशन की तारीख से 24 वर्षों के पश्चात् फाइल किया गया था । दोनों ही आक्षेपों में यह प्रार्थना भी की गई कि चूंकि उन लोगों को चकबंदी कार्यवाहियों के बारे में अभी तुरंत ही ज्ञात

हुआ है इसलिए, विलंब, यदि कारित हुआ हो, क्षमा किए जाने योग्य है । ये आक्षेप प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा पृथक्-पृथक् फाइल किए गए शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित थे । याची द्वारा इन आक्षेपों का प्रतिवाद इस आधार पर किया गया कि ये आक्षेप अत्यधिक विलंबित प्रक्रम पर फाइल किए गए हैं, यद्यपि आक्षेपकर्ताओं को चकबंदी के बारे में जानकारी थी और उन्होंने अपने भूखंडों के संबंध में आक्षेप फाइल भी किए थे, किंतु उन्होंने जानबूझकर भूखंड संख्या 97 के संबंध में कोई आक्षेप फाइल नहीं किया और इन परिस्थितियों में वर्तमान विलंब क्षमा किए जाने का कोई आधार नहीं है और आक्षेप परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण अस्वीकृत किए जाने योग्य है । चकबंदी अधिकारी ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचारोपरांत उक्त आक्षेपों को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित करते हुए तारीख 11 नवंबर, 2011 का आदेश पारित करते हुए इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि 24 वर्षों के विलंब को क्षमा किए जाने का कोई पर्याप्त कारण प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा अपने आक्षेपों में दर्शित नहीं किया गया । प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 और 3 ने चकबंदी अधिकारी के इस आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की । इन दोनों ही अपीलों को चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी द्वारा तारीख 20 मई, 2013 के आदेश द्वारा पोषणीय न होने के कारण, चूंकि आक्षेपों को विलंब के आधार पर खारिज किया गया था और न कि गुणागुण के आधार पर, खारिज कर दिया गया । प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 और 3 ने तारीख 20 मई, 2013 के आदेश के विरुद्ध चकबंदी उपनिदेशक के समक्ष 2013 की पुनरीक्षण संख्या 1990 और 1991 फाइल की । चकबंदी उप निदेशक ने तारीख 22 अप्रैल, 2014 के आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों ही पुनरीक्षणों को मंजूर कर लिया और अधिनियम की धारा 9-ख और धारा 20 के अधीन पारित किए गए आक्षेपों को फाइल करने में हुए विलंब को क्षमा कर दिया । चकबंदी उपनिदेशक ने मताभिव्यक्ति की कि यद्यपि, चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी ने न्यायत: आदेश पारित किया चूंकि परिसीमा के आधार पर फाइल किए गए आक्षेपों को खारिज किए जाने के विरुद्ध उनके समक्ष फाइल की गई अपील पोषणीय नहीं थी और उन्होंने पुनरीक्षणों को फाइल किए जाने में कारित विलंब को क्षमा करते हुए चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध फाइल किए गए पुनरीक्षण पर विचार किया । चकबंदी उपनिदेशक द्वारा तारीख 22

अप्रैल, 2014 को पारित आदेश को वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित किया गया है । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह प्रकटत: स्पष्ट हो जाता है कि समय-सीमा प्रपत्र 5 में सूचना की प्राप्ति से या अधिनियम की धारा 9-क के अधीन सूचना के प्रकाशन से आरंभ होती है और न कि कब्जा प्रदान किए जाने की तारीख से । उक्त मत इस न्यायालय द्वारा महादेव और अन्य बनाम चकबंदी उपनिदेशक/सहायक चकबंदी अधिकारी, भूराजस्व और अन्य वाले मामले में पहले ही व्यक्त किए जा चुके हैं । प्रत्यर्थियों की तरफ से जिस निर्णय को उद्धृत किया गया, वह इस बाबत है कि आक्षेप फाइल किए जाने में कारित विलंब पर विचार करते हुए उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए और आक्षेपों को गुणागुण पर निर्णीत किए जाने के द्वारा सारभूत न्याय किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत की गई उक्त प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने लंका वैंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन पर विचार करते हुए न्यायालयों को असीमित और अनिर्बंधित वैवेकिक शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं । समस्त वैवेकिक शक्तियों, विशेष रूप से न्यायिक शक्तियों का प्रयोग विधि के अंतर्गत ज्ञात युक्तिसंगत सीमाओं के भीतर किया जाना चाहिए । विवेकाधिकार का प्रयोग सुव्यवस्थित रीति में किया जाना चाहिए जिसके लिए पर्याप्त कारण उपलब्ध हों । सनक या शौक, पूर्वाग्रह या पक्षपात वैवेकिक शक्तियों के प्रयोग के आधार का स्वरूप नहीं बन सकते और न ही बनना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने मणीबेन देवराज शाह बनाम बृहान मुंबई नगरपालिका वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि जिस बात पर जोर दिया जाना चाहिए, वह यह है कि यद्यपि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और ऐसे ही अन्य कानूनों के अधीन उदार और न्यायोन्मुख दृष्टिकोण अपनाया जाना अपेक्षित है, फिर भी न्यायालयों को इस तथ्य के प्रति अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए कि किसी सफल मुकदमेबाज ने उस निर्णय के आधार पर कतिपय अधिकार अर्जित

कर लिए हैं, जो चुनौती के अधीन है और मुकदमेबाजी के विभिन्न प्रक्रमों पर लागत के अतिरिक्त अत्यधिक समय व्यय किया गया है । अभिव्यक्ति 'पर्याप्त कारण' का किसी विनिर्दिष्ट मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर क्या प्रभाव होगा, यह व्यापक रूप से स्पष्टीकरण की सद्भावी प्रकृति पर निर्भर होगा । यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदक द्वारा कोई उपेक्षा नहीं बरती गई और विलंब क्षमा किए जाने के लिए दर्शित कारण असद्भावी प्रतीत नहीं होते, तो वह न्यायालय विलंब को क्षमा कर सकता है । इसके विपरीत यदि आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या यह पाया जाता है कि वह अपने मुकदमे के अभियोजन में पूर्णतया उपेक्षावान था, तो यह विवेकाधिकार का विधिसम्मत प्रयोग होगा कि विलंब को क्षमा न किया जाए । चकबंदी अधिकारी ने मामले के प्रत्येक पहलू पर विचारोपरांत अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों को चकबंदी के बारे में जानकारी थी और उन्होंने कुछ अन्य भूखंडों के संबंध में, सिवाय विवादित भूखंड अर्थात् भूखंड संख्या 97 के, चक के आबंटन को लेकर मुकदमेबाजी का अनुगमन इस न्यायालय तक किया और प्रत्यर्थी संख्या 1 को चकबंदी समिति का सदस्य होने के नाते चकबंदी क्रियान्वयन के बारे में जानकारी भी थी और इसलिए आक्षेप फाइल किए जाने में असमान्य रूप से कारित 24 वर्ष के विलंब का पर्याप्त स्पष्टीकरण बिल्कुल भी नहीं दिया गया । प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया गया और वे पूर्ण रूप से मामले के अभियोजन में असावधान थे । उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए चकबंदी उपनिदेशक द्वारा पारित आदेश विधि के अंतर्गत वांछित प्रतिपादना के सर्वथा विपरीत है और आक्षेपित आदेश मामले के विधिक पहलुओं पर विचार किए बिना पारित किया गया है । चकबंदी उपनिदेशक ने प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों की तरफ से बिना कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए बिना फाइल किए गए आक्षेपों के आधार पर विलंब को क्षमा कर दिया है । उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए 2014 पुनरीक्षण संख्या 1090 और 1091 में इलाहाबाद के चकबंदी उपनिदेशक द्वारा पारित तारीख 22 अप्रैल, 2014 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है और अधिनियम

की धारा 9 के अधीन वाद संख्या 351/820 में इलाहाबाद के सराओं के चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित तारीख 11 नवंबर, 2011 के आदेश को मान्य ठहराया जाता है । (पैरा 21, 22, 23, 24, 25, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] 2015 (126) आर. डी. 484 :
महादेव और अन्य बनाम **चकबंदी उपनिदेशक/सहायक चकबंदी अधिकारी, राजस्व और अन्य** ; 21

[2012] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1629 :
मणीबेन देवराज शाह बनाम **बृहान मुंबई नगरपालिका** ; 24

[2011] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1199 :
लंका वैंकटेश्वरलू बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** । 23

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका संख्या 26803.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री एम. एम. बी. सिन्हा, आर. बी. सिंह और विनीत पांडेय

प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी अधिवक्ता, सर्वश्री दीपतमान सिंह, दीप्तिमान सिंह, दिवाकर सिंह, कुणाल रवि सिंह और आर. सी. सिंह

निर्णय

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका 2014 के पुनरीक्षण संख्या 1090 और 1091 (**प्रेम कुमार चड्ढ़ा और अन्य** बनाम **गोपाल चड्ढ़ा और अन्य**) में इलाहाबाद के चकबंदी उपनिरीक्षक

द्वारा पारित तारीख 22 अप्रैल 2014 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई है, जिसके द्वारा दोनों ही पुनरीक्षणों को मंजूर कर लिया गया और इलाहाबाद के सोहराओं के चकबंदी अधिकारी को यह निर्देश देते हुए आक्षेप फाइल करने में हुए विलंब को क्षमा कर दिया गया कि वे आक्षेपों का निर्णय गुणागुण के आधार पर करें ।

2. वर्तमान मामले में विचारार्थ सुसंगत तथ्य इस प्रकार हैं :-

"यह विवाद जिला इलाहाबाद के परगना और सोहराओं के ग्राम खनीनार में स्थित भूखंड संख्या 97, जिस क्षेत्रफल छह बीघा चार बिस्वा और 19 धूर है, से संबंधित है । प्रश्नगत ग्राम को वर्ष 1956-57 चकबंदी क्रियाकलाप के अधीन किया गया था और अंतिम अभिलेख कृष्ण चंद्र कौर, शरद चंद्र कौर, संदीप कुमार, सीमा कौर, कृष्ण चंद्र कौर के पुत्र प्रदीप कौर और कुमारी मुखला कौर के नाम में तैयार किए गए थे और वे सभी भूमिधर हो गए और इन लोगों को भूमि का कब्जा प्राप्त हो गया । भूखंड संख्या 44, 71, 75, 97 और 100 (कुल क्षेत्रफल 51 बीघा, 13 बिस्वा और 9 विसवांसी) वाली भूमि को उपरोक्त व्यक्तियों ने शिव प्रसाद चड्ढ़ा, प्रेम कुमार चड्ढ़ा और गोपाल चड्ढ़ा के पक्ष में अंतरित कर दिया और इस प्रकार इन तीनों व्यक्तियों को पूर्वोक्त पांच भूखंडों में एक तिहाई अंश प्राप्त हो गया, जिसको उन्होंने वर्ष 1981-82 में विक्रय विलेख द्वारा अर्जित किया था । तत्पश्चात्, द्वितीय चकबंदी कार्यवाही आरंभ हुई और 1953 के उत्तर प्रदेश चकबंदी और भूधृत अधिनियम की धारा 4 ,(2) के अधीन वर्ष 1981-82 में अधिसूचना जारी की गई और इस अधिनियम की धारा 9 के अधीन अधिसूचना को तारीख 31 अक्तूबर, 1984 को संप्रकाशित कर दिया गया । इस अधिनियम की धारा 20 के अधीन अंतरिम चकबंदी योजना तारीख 20 मार्च, 1986 को संप्रकाशित ।"

3. अभिलेखों से यह भी दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा ने अधिनियम की धारा 9-क(2) और साथ ही धारा 20 के अधीन भूखंड संख्या 75/1 और चक संख्या 50 के संबंध में भुलई

(तृतीय पक्ष) नामक व्यक्ति के विरुद्ध आक्षेप फाइल किए । इन दोनों ही आक्षेपों का संबंध विवादित भूखंड संख्या 97 से नहीं था,

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा फाइल किए गए इन आक्षेपों पर चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा आदेश पारित किए गए जिनको अंततः प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा 1993 की रिट याचिका संख्या 14265 (**प्रेम कुमार चड्ढ़ा** बनाम **चकबंदी उपनिदेशक, इलाहाबाद और अन्य**) में चुनौती दी गई और उक्त रिट याचिका बाद में खारिज हो गई । उक्त रिट याचिका में चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में याचियों की बेदखली को स्थगित करते हुए अंतरिम आदेश पारित किया गया था । रिट याचिका के खारिज हो जाने के पश्चात् भूमि के चकों का कब्जा दिया जाना आरंभ किया गया जिसको 15 मई, 2008 से 27 जून, 2008 के मध्य अभिलिखित किया गया । प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा और राजेश कुमार चड्ढ़ा द्वारा अधिनियम की धारा 9-ख और साथ ही धारा 20 के अधीन तारीख 16 जुलाई, 2008 और 12 जुलाई, 2008 को पृथक्-पृथक् यह मांग करते हुए आक्षेप फाइल किए गए थे कि भूखंड संख्या 97 वाली भूमि को इस आधार पर चकबंदी के बाहर रखा जाए कि यह सड़क मार्ग के किनारे वाली भूमि है । उक्त आक्षेपों को अधिनियम की धारा 9 के अधीन जारी की गई अधिसूचना के संप्रकाशन की तारीख से 24 वर्षों के पश्चात् फाइल किया गया था । दोनों ही आक्षेपों में यह प्रार्थना भी की गई कि चूंकि उन लोगों को चकबंदी कार्यवाहियों के बारे में अभी तुरंत ही ज्ञात हुआ है इसलिए, विलंब, यदि कारित हुआ हो, क्षमा किए जाने योग्य है । ये आक्षेप प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा पृथक्-पृथक् फाइल किए गए शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित थे ।

5. याची द्वारा इन आक्षेपों का प्रतिवाद इस आधार पर किया गया कि ये आक्षेप अत्यधिक विलंबित प्रक्रम पर फाइल किए गए हैं, यद्यपि आक्षेपकर्ताओं को चकबंदी के बारे में जानकारी थी और उन्होंने अपने भूखंडों के संबंध में आक्षेप फाइल भी किए थे । किंतु उन्होंने जानबूझकर भूखंड संख्या 97 के संबंध में कोई आक्षेप फाइल नहीं किया और इन परिस्थितियों में वर्तमान विलंब को क्षमा किए जाने का कोई आधार नहीं है और आक्षेप परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण अधिकृत किए जाने योग्य है ।

6. चकबंदी अधिकारी ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचारोपरांत उक्त आक्षेपों को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित करते हुए तारीख 11 नवंबर, 2011 का आदेश पारित करते हुए इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि 24 वर्षों के विलंब को क्षमा किए जाने के लिए कोई पर्याप्त कारण प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा अपने आक्षेपों में दर्शित नहीं किया गया है । प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 और 3 ने चकबंदी अधिकारी के इस आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की जो अधिनियम की धारा 11(1) के अधीन अपील संख्या 1600ए/1566 और धारा 21(2) के अधीन अपील संख्या 374/345 हैं । इन दोनों ही अपीलों को चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी द्वारा तारीख 20 मई, 2013 के आदेश द्वारा पोषणीय न होने के कारण, चूंकि आक्षेपों को विलंब के आधार पर खारिज किया गया था और न कि गुणागुण के आधार पर, खारिज कर दिया गया ।

7. प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 और 3 ने तारीख 20 मई, 2013 के आदेश के विरुद्ध चकबंदी उपनिदेशक के समक्ष 2013 के पुनरीक्षण संख्या 1990 और 1991 फाइल किए । चकबंदी उपनिदेशक ने तारीख 22 अप्रैल, 2014 के आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों ही पुनरीक्षणों को मंजूर कर लिया और अधिनियम की धारा 9-ख और धारा 20 के अधीन पारित किए गए आक्षेपों को फाइल करने में हुए विलंब को क्षमा कर दिया । चकबंदी उपनिदेशक ने मताभिव्यक्ति की कि यद्यपि, चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी ने न्यायत: आदेश पारित किया गया है चूंकि परिसीमा के आधार पर फाइल किए गए आक्षेपों को खारिज किए जाने के विरुद्ध उनके समक्ष फाइल की गई अपील पोषणीय नहीं थी और उन्होंने पुनरीक्षणों को फाइल किए जाने में कारित विलंब को क्षमा करते हुए बंदोबस्त अधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण पर विचार किया ।

8. चकबंदी उपनिदेशक द्वारा तारीख 22 अप्रैल, 2014 को पारित किए गए आदेश को वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित किया गया है ।

9. मैंने याची के विद्वान् काउंसेल श्री एच. एम. बी. सिन्हा और प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के विद्वान् काउंसेल श्री कुणाल रवि सिंह और श्री आरती सिंह को सुना ।

10. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थियों को प्रश्नगत ग्राम में चकबंदी क्रियान्वयन के बाबत जानकारी थी चूंकि उन्होंने वर्ष 1986 में ही चक के आबंटन के संबंध में कुछ आक्षेप फाइल किए थे, किंतु उन्होंने भूखंड संख्या 97 के संबंध में कोई आक्षेप फाइल नहीं किया और इसलिए मामले का प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा 24 वर्षों के पश्चात् फाइल किए गए आक्षेपों पर विचार नहीं किया जा सकता और उनके द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों को चकबंदी अधिकारी द्वारा तारीख 11 नवंबर, 2011 के आदेश द्वारा न्यायत: खारिज किया गया है ।

11. याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा आगे यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा फाइल की गई 1993 की रिट याचिका संख्या 14265 की अंतर्वस्तु से स्पष्टत: दर्शित होता है कि उनको चकबंदी क्रियान्वयन के बाबत जानकारी थी और इस आधार पर विलंब क्षमा किए जाने की प्रार्थना किया जाना कि चकबंदी के बारे में अधिकृत जानकारी अभी तुरंत हुई है, पूर्णतया गलत है और रिट याचिका में उनके स्वयं की स्वीकारोक्ति के विरुद्ध है । याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा आगे दलील दी गई कि प्रत्यर्थी संख्या 1 चकबंदी समिति का सदस्य भी है और उसको ग्राम में चकबंदी क्रियान्वयन के बाबत जानकारी थी और इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि उसको चकबंदी क्रियान्वयन के बारे में जानकारी आक्षेप फाइल किए जाने के पूर्व अभी तुरंत प्राप्त हुई है ।

12. इसके विपरीत प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि उनको चकबंदी क्रियान्वयन के बाबत वर्ष 2008 में किसी समय रिट याचिका के खारिज हो जाने के उपरांत जानकारी प्राप्त हुई थी, जब चक के कब्जे की कार्यवाही आरंभ की जा रही थी और इसलिए चकबंदी उपनिदेशक ने आक्षेप फाइल किए जाने में हुए विलंब को न्यायत: क्षमा किया है और मामले को प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों को गुणागुण पर निर्णीत किए जाने के लिए चकबंदी अधिकारी को प्रतिप्रेक्षित किया ।

13. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा आगे दलील दी गई कि

याची के हितों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, यदि आक्षेपों का निर्णय गुणागुण के आधार पर किया जाता है और पक्षों के मध्य सारभूत न्याय किया जाता है और इस प्रयोजनार्थ न्याय करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग किया जाना चाहिए और मामले का निर्णय गुणागुण के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि तकनीकी आधारों पर ।

14. मैंने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा किए गए परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

15. अधिनियम की धारा 9(2) के अधीन या प्रपत्र 5 में सूचना की प्राप्ति के पश्चात् आक्षेप फाइल किए जाने या अधिनियम की धारा 9(1) के अधीन ग्राम के संप्रकाशन के पश्चात् 21 दिनों की समय-सीमा उपबंधित की गई है । स्वीकृततः, ग्राम को अधिनियम की धारा 9 के अधीन तारीख 31 अक्तूबर, 1984 को अधिसूचित किया गया था । प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 ने अपने आक्षेपों में कहीं पर भी प्रपत्र 5 की तामीली से इनकार नहीं किया है और उनके द्वारा विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ एक मात्र कारण यह दिया गया है कि उनको चकबंदी क्रियान्वयन की सूचना अभी तुरंत प्राप्त हुई है, जब ग्राम में उन भूखंडों के कब्जे प्रदान किए जा रहे थे जिनकी चक की पुष्टि वर्ष 2008 में हो चुकी थी, और उनको तभी चकबंदी के बारे में जानकारी हुई ।

16. अधिनियम की धारा 9(2) के अधीन आक्षेप फाइल किए जाने के लिए समय-सीमा प्रपत्र 5 में सूचना प्राप्ति की तारीख से या अधिनियम की धारा 9(1) के अधीन ग्राम के संप्रकाशन की तारीख से 21 दिन है । स्वीकृततः, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 ने वर्तमान आक्षेपों के फाइल किए जाने के पूर्व चकबंदी प्राधिकारियों के आदेश को चुनौती देते हुए 1993 की रिट याचिका संख्या 14265 फाइल की थी, जिससे यह दर्शित होता है कि उनको चकबंदी क्रियान्वयन के बारे में जानकारी थी । उक्त रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 2, 3, 4 और 5, जिनको वर्तमान रिट याचिका के पैराग्राफ 6 में उद्धृत किया गया है, को नीचे प्रत्युत्पादित किया जा रहा है :-

"**पैरा 2** : यह कि आरंभिक रूप से सहायक चकबंदी अधिकारी ने भूखंड संख्या 71, 75/2, 76, 77, 78, 80, 84, 82, 86 और 87 पर याची को चक प्रस्तावित करते हुए, जिसकी कुल माप 13 बीघा 10 बिस्वा और 10 धूर थी, प्रस्तावित की थी । सहायक चकबंदी अधिकारी का यह प्रस्ताव याची के 16 बीघा 16 बिस्वा और 19 धूर की माप वाले मूल भूखंडों के बदले में था । सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा किए गए प्रस्ताव को दर्शित करते हुए याची के प्रपत्र 23 (भाग-1) की फोटो प्रति इस याचिका के साथ संलग्न-1 के रूप में संलग्न की गई है । याची के प्रपत्र 23 की एक प्रति इस रिट याचिका के संलग्नक 3 के रूप में चिह्नित है और फाइल की जा रही है ।

पैरा 3 : यह कि सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा याची के चक में प्रस्तावित भूखंडों को इलाहाबाद के सरावं के सहायक चकबंदी अधिकारी के पेशकार द्वारा जारी मानचित्र के आधार पर अभिनिश्चित किया जा सकता है ।

पैरा 4 : यह कि याची सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा दिए गए प्रस्ताव से संतुष्ट था किंतु उसने आयताकार चक प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ सहायक चकबंदी अधिकारी के समक्ष आक्षेप फाइल किया था । इस आक्षेप में याची का पक्षकथन यह था कि चूंकि याची की आबादी भूखंड संख्या 75 और अन्य भूखंडों (जिनको चक मानचित्र में संलग्नक 2 में लाल चिह्न द्वारा दर्शित किया गया है) के मध्य विद्यमान थी और चकबंदी अधिकारी द्वारा प्रस्तावित याची के चक के दक्षिणी दिशा में भूखंड संख्या 77, 76 और 84 पर थी,चक संख्या 100 को हटा दिया गया था और उस चक के क्षेत्रफल को याची के चक में दिया जाना था और उसके बदले में याची के चक में से भूखंड संख्या 71 को हटाया जाना था और इस प्रकार से याची को वर्गाकार चक प्राप्त हो जाता । भूखंड संख्या 77,80 और 84 इत्यादि के दक्षिणी दिशा में चक संख्या 100 को हटाए जाने का एक अन्य आधार यह था कि यह चक याची की आबादी की पश्चिमी दिशा की तरफ था । यहां पर यह उल्लेख

किया जाना आवश्यक है कि भूखंड संख्या 75 पर याची की आबादी वाले चक को हटा दिया गया था । मानचित्र में चिह्न 'ए' द्वारा दर्शित पूर्वोक्त आबादी में याची का एक नलकूप भी है ।

पैरा 5 : अन्य धृति धारकों द्वारा भी अन्य अनेक आक्षेप फाइल किए गए थे । ये आक्षेप याची के आक्षेपों में से एक भाग, अन्य धृतिधारकों के आक्षेप और ग्राम खनिनार के ग्रामों के सम्बंध में थे और आवेदन में यह अनुरोध किया गया था कि याची की भूमि ग्राम के एक कोने में थी, जिसका प्रयोग ग्रामीणों के आवागमन के लिए किया जाता था । ग्रामीण इस बाबत सहमत हो गए थे कि इस भूमि को बचत भूमि के रूप में छोड़ दिया जाए । ग्रामीणों के आवेदन की सत्य प्रति को संलग्नक 3 के रूप में संलग्न किया गया है । इस आवेदन का परिणाम यह हुआ कि भूखंड संख्या 44 को बचत भूमि के रूप में छोड़ दिया गया और चकबंदी अधिकारी ने तारीख 14 मई, 1986 के आदेश द्वारा एक ही आदेश पारित करते हुए समस्त आक्षेपों को निर्णीत कर दिया और याची के चक में भी कोई परिवर्तन नहीं किया । इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि भूखंड संख्या 76 और 77 इत्यादि पर याची का चक 2 बीघा 12 बिस्वा और 12 धूर की सीमा तक सीमित हो गया और उसको भूखंड संख्या 44/2 पर एक दूसरा चक आबंटित कर दिया गया । चकबंदी अधिकारी द्वारा याची को एक छोटा सा यह लाभ भी प्रदान किया गया कि याची को भूखंड संख्या 93 और 94 पर चक प्राप्त हो गया, इस प्रकार उसको सड़क का लाभ भी प्राप्त हो गया ।"

17. प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए खंडन शपथपत्र में उपरोक्त पैराग्राफों की अंतर्वस्तु से विनिर्दिष्ट रूप से इनकार नहीं किया गया है ।

18. प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में जिन तथ्यों का वर्णन किया गया है, उनके परिशीलन से यह बात पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है कि जब प्रत्यर्थियों को अधिनियम की

धारा 9 के अधीन सूचना के प्रकाशन के बाबत जानकारी थी, तो उन्होंने चक के आबंटन के संबंध में अधिनियम की धारा 9-क(2) और धारा 20 के अधीन आक्षेप फाइल किए थे । इन सभी बातों के बावजूद प्रत्यर्थी संख्या 1 प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा इलाहाबाद के चकबंदी उपनिदेशक के समक्ष फाइल किए गए 1987 के पुनरीक्षण संख्या 629 के पैरा 4 में जिन आधारों का अवलंब लिया गया था, उनमें यह स्वीकार किया गया कि सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा विरचित प्रस्तावित योजना के मतावलंबन में वास्तविक कब्जा प्रदान किया जा चुका है ।

19. चकबंदी अधिकारी ने स्वयं प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए आक्षेपों को अस्वीकृत करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि अधिनियम की धारा 9 के अधीन अधिसूचना जारी किए जाते समय अर्थात् तारीख 31 अक्तूबर, 1984 को भूखंड संख्या 97 की भूमि पर कोई सड़क विद्यमान नहीं थी और यहां तक कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अन्य भूखंडों के संबंध में, सिवाए प्रश्नगत भूखंड के, चकबंदी के समस्त प्रक्रमों पर चक के आबंटन के संबंध में मामले का प्रतिवाद किया था । इस संबंध में चकबंदी अधिकारी के आदेश के सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "आपत्तिकर्ता द्वारा इसी न्यायालय के आदेश तारीख 16 अक्तूबर, 2009 वाद संख्या 151 अंतर्गत धारा 9-क(2) का उल्लेख किया गया है, चूंकि गाटा संख्या 6 व 16 पर किसी मूल खातेदार का चक प्रविष्ट नहीं था और तभी चक उड़ान बनी थी । सड़क वर्तमान में सड़क के किनारे होने की वजह से चकबंदी प्रक्रिया से पृथक् कर दी गई है । जिसके खिलाफ अपील दायर की गई । अपील संख्या 70/151 अंतर्गत धारा 9-ख(3) रामदास आदि **बनाम** रामचंद्र अपील स्वीकार की गई । आदेश वाद संख्या 151 तारीख 16 अक्तूबर, 2009 निरस्त किया गया और वह अंतिम है । आदेश प्रति पत्रावली में संलग्न है । प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा यह कहा जाना कि उन्हें कब्जा परिवर्तन किए जाने के दौरान जानकारी हुई, के बाबत चकबंदी अभिलेखों से स्पष्ट है कि प्रेम कुमार चड्ढ़ा

चकबंदी समिति के सदस्य भी रहें । चकबंदी समिति के सदस्य थे श्री बंशीलाल प्रधान अध्यक्ष, श्री ज्योतिका प्रसाद सदस्य, श्री बद्री प्रसाद सदस्य, श्री प्रेम कुमार चड्ढ़ा सदस्य तथा श्री रामदुलारे सदस्य चकबंदी समिति के थे । चकबंदी समिति की सभी बैठकें चड्ढ़ा फार्म पर ही की गई है । इस प्रकार सभी कार्यवाही प्रेम कुमार चड्ढ़ा की देखरेख में हुई । उनके परिवार के किसी भी व्यक्ति द्वारा कोई वाद कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया । प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा ही समस्त कार्यवाही तथा मुकदमे ए.सी.ओ./सी.ओ./एस.ओ.सी./डी.डी.सी./माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष अपने हक की लड़ाई लड़ते रहे हैं, परंतु गाटा संख्या 97 के बाबत कोई वाद कभी भी प्रस्तुत नहीं किया । इस संबंध में चकबंदी अधिकारी, कौडिहाल के आदेश वाद संख्या 829 अंतर्गत धारा 20 तारीख 14 मई, 1986 को दिया जा सकता है, जिसमें चकबंदी अधिकारी ने कहा है कि प्रेम कुमार चड्ढ़ा के मूल गाटा संख्या 44, 71, 75, 97, 100 आधे से ज्यादा उसर हैं तथा इन पर उपज नहीं होती । आपत्तिकर्ता प्रेम कुमार चड्ढ़ा को जो चक दिया गया है, उनके मूल गाटा से अधिक है । आपत्ति प्रेम कुमार चड्ढ़ा निरस्त की गई ।

जहां तक आपत्तिकर्ता प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा माननीय चकबंदी आयुक्त के पत्र संख्या 2620/जी-415/2002 तारीख 12 मई, 2003 का उल्लेख किया है । उक्त आदेश का भी विधिवत परिशीलन किया गया । उक्त आदेश से निदेशालय के पत्र संख्या 37जी.-452/81 तारीख 26 मई, 1981 एवं प्रमाणपत्र संख्या 8634/जी.एस.-110/88-89 तारीख 9 सिबंतर, 1988, जिसका विषय सड़क के किनारे स्थित ग्राम के सिद्धांतों के विवरणपत्र बनाते समय विशेष सावधानी बरतने के संबंध में है । सड़क के किनारे की भूमि निर्माण महत्व की भूमि होती है । चकबंदी समिति के परामर्श से चकबंदी प्रक्रिया से पृथक् रखा जाए । इस प्रक्रम में श्री प्रेम कुमार चड्ढ़ा स्वयं चकबंदी समिति के सदस्य थे । उन्हें पूरी जानकारी थी । सभी बैठकें उनके ही फार्म पर की गई । उन्हें पूरी चकबंदी प्रक्रिया

की जानकारी रही है । यह भी कहा जा सकता है कि ग्राम की पूरी चकबंदी प्रक्रिया उनकी देखरेख में हुई है । प्रेम कुमार चड्ढ़ा द्वारा सड़क से लगी हुई भूमि के बारे में माननीय चकबंदी आयुक्त के परिपत्र तारीख 12 मई, 2003 का हवाला दिया गया है । माननीय चकबंदी आयुक्त का परिपत्र राष्ट्रीय, राज्य, राजमार्ग या वाणिज्यिक महत्व से संबंधित है । किसी रास्ते या लिंक रोड के बाबत नहीं । प्रश्नगत सड़क मूल्यांकन लगाते समय एक सामान्य रास्ता थी । गाटा संख्या 97 का मूल्यांकन (विनियम अनुपात) तारीख 21 अगस्त, 1984 को लगाया गया है । उस समय उक्त गाटे के सामने का गाटा रास्ता के रूप में दर्ज था, जो वाणिज्यिक नहीं था । माननीय चकबंदी आयुक्त महोदय का आदेश/निर्देश उन गाटों के बाबत है जो विनियम अनुपात लगाते समय निर्माण/वाणिज्यिक थे । जिस सड़क की बात की गई है, वह सड़क वर्ष 2008 में निर्मित हुई थी । वर्ष 1984 की स्थिति के हिसाब से विनियम अनुपात लगाया गया था तथा आपत्तिकर्ता स्वयं चकबंदी समिति का सदस्य रहा है एवं हर स्तर पर मुकदमा लड़ता रहा है और उसे पूरी जानकारी थी । यह कहना कि कब्जा परिवर्तन के समय उन्हें जानकारी हुई, सत्य प्रतीत नहीं होता । आपत्तिकर्ता पढ़ा-लिखा प्रबुद्ध व्यक्ति है । वर्ष 1984 की स्थिति भिन्न थी । अब वर्ष 2008 की स्थिति भिन्न है । आपत्तिकर्ता अपनी चक संख्या 50 के बाबत सभी स्तर के न्यायालय अर्थात् ए.सी.ओ./सी.ओ./एस.ओ.सी./डी.डी.सी./माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष वाद दाखिल करता रहा है और उसे सफलता/असफलता मिलती रही है, परंतु गाटा संख्या 97 के बाबत कोई भी वाद कभी भी किसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया । चकबंदी अधिकारी के आदेश तारीख 14 मई, 1996 वाद संख्या 829 से स्पष्ट है कि प्रेम कुमार चड्ढ़ा को गाटा संख्या 97 के बाबत पूरी जानकारी थी । अब यह कहना कि कब्जा परिवर्तन के दौरान जानकारी हुई, सही प्रतीत नहीं होता । यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि पर्याप्त धन खर्च करके गाटा संख्या 97 को कृषि योग्य बनाया गया है, क्योंकि चकबंदी अधिकारी के आदेश में यह स्पष्ट है कि यह भूमि उसर के रूप में दर्ज थी ।

वर्तमान समय में अच्छी सड़क बन गई है । वास्तव में अब जमीन सड़क के किनारे है और वाणिज्यिक महत्व की हो गई है । जिस समय विनियम अनुपात लगाया गया था, सड़क बहुत पतली थी, किंतु अब काफी चौड़ी हो गई है । अगल-बगल की जमीने भी सड़क में चली गई हैं । यहां विचारणीय बिंदु यह है कि जिस भूमि की कीमत वर्ष 1984 में 50 पैसा थी, अब वर्ष 2008 में सड़क बन जाने के कारण 100 पैसा से अधिक की हो गई है ।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वर्ष 1984/86 में, जब विनिमय अनुपात लगाया गया था, उस समय सड़क वाणिज्यिक महत्व की नहीं थी बल्कि रास्ता था जिसका भी मूल्यांकन लगाया गया था । एक व्यक्ति का कब्जा भी था । कब्जेदार का कब्जा खारिज किया गया था और मूल्यांकन भी निरस्त किया गया था और रास्ता में दर्ज कर सी.एच. 18 किया गया था । यह आपत्ति 24 वर्ष बाद की गई है । प्रेम कुमार चड्ढ़ा को संपूर्ण प्रक्रिया की जानकारी थी । चकबंदी समिति के सदस्य भी थे । उन्हीं के चक पर बैठक भी होती थी । गाटा संख्या 97 के बाबत कभी कोई वाद प्रस्तुत नहीं किया गया तथा चकबंदी अधिकारी के आदेश तारीख 14 मई, 1986 की जानकारी होने के बाद यह कहना सरासर गलत है कि उन्हें कोई जानकारी नहीं थी । अब चूंकि वर्ष 2008 में पक्की सड़क का निर्माण हो गया है और वर्ष 1984 की स्थिति की तुलना में वर्ष 2008 की स्थिति की तुलना किया जाना उचित प्रतीत नहीं होता । मांग न्यायोचित प्रतीत नहीं होती । धारा 5 मियाद का लाभ देना औचित्यपूर्ण नहीं है । आपत्ति प्रेम कुमार चड्ढ़ा व राजेश कुमार आदि स्वीकार किए जाने योग्य प्रतीत नहीं होती ।"

20. चकबंदी उपनिदेशक ने आक्षेपित आदेश द्वारा मात्र इस आधार पर आक्षेप फाइल किए जाने में कारित हुए विलंब को क्षमा किया है कि भूमि का कब्जा वर्ष 1988 में किसी समयबिंदु पर दिया गया था और इसलिए प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों को भूमि का कब्जा प्रदान किए

जाने के पश्चात् जानकारी हो गई थी और उन्होंने चकबंदी अधिकारी द्वारा अभिलिखित ऊपर उद्धृत निष्कर्ष को अपास्त कर दिया । चकबंदी उपनिदेशक ने इस तथ्य पर भी विचार किया कि पूर्व में चक के आबंटन के संबंध में आक्षेप प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए थे और उक्त कार्यवाही इस न्यायालय तक पहुंच गई और रिट याचिका के खारिज हो जाने के पश्चात् और साथ ही भूखंड संख्या 97 की प्रकृति में परिवर्तन के पश्चात् प्रश्नगत आक्षेप फाइल किए गए थे ।

21. पूर्वोक्त विनिश्चय में और साथ ही विधिक प्रतिपादना के आधार पर, जिस पर ऊपर चर्चा की गई है, यह प्रकटत: स्पष्ट हो जाता है कि समय-सीमा प्रपत्र 5 में सूचना की प्राप्ति से या अधिनियम की धारा 9-क के अधीन सूचना के प्रकाशन से आरंभ होती है और न कि कब्जा प्रदान किए जाने की तारीख से । उक्त मत इस न्यायालय द्वारा **महादेव और अन्य** बनाम **चकबंदी उपनिदेशक/सहायक चकबंदी अधिकारी, भूराजस्व और अन्य**[1] वाले मामले में पहले ही व्यक्त किए जा चुके हैं ।

22. प्रत्यर्थियों की तरफ से जिस निर्णय को उद्धृत किया गया, वह इस बाबत है कि आक्षेप फाइल किए जाने में कारित विलंब पर विचार करते हुए उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए और आक्षेपों को गुणागुण पर निर्णीत किए जाने के द्वारा सारभूत न्याय किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत की गई उक्त प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया ।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **लंका वैंकटेश्वरलू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन पर विचार करते हुए न्यायालयों को असीमित और अनिर्बंधित वैवेकिक शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं । समस्त वैवेकिक शक्तियों, विशेष रूप से न्यायिक शक्तियों का प्रयोग विधि के

---

[1] 2015 (126) आर. डी. 484.

[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1199.

अंतर्गत ज्ञात युक्तिसंगत सीमाओं के भीतर किया जाना चाहिए । विवेकाधिकार का प्रयोग सुव्यवस्थित रीति में किया जाना चाहिए जिसके लिए पर्याप्त कारण उपलब्ध हों । सनक या शौक, पूर्वाग्रह या पक्षपात वैवेकिक शक्तियों के प्रयोग के आधार का स्वरूप नहीं बन सकते और न ही बनना चाहिए ।

24. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मणीबेन देवराज शाह** बनाम **बृहान मुंबई नगरपालिका**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि जिस बात पर जोर दिया जाना चाहिए, वह यह है कि यद्यपि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और एसे ही अन्य कानूनों के अधीन उदार और न्यायोन्मुख दृष्टिकोण अपनाया जाना अपेक्षित है, फिर भी न्यायालयों को इस तथ्य के प्रति अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए कि किसी सफल मुकदमेबाज ने उस निर्णय के आधार पर कतिपय अधिकार अर्जित कर लिए हैं, जो चुनौती के अधीन है और मुकदमेबाजी के विभिन्न प्रक्रमों पर लागत के अतिरिक्त अत्यधिक समय व्यय किया गया है । अभिव्यक्ति 'पर्याप्त कारण' का किसी विनिर्दिष्ट मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर क्या प्रभाव होगा, यह व्यापक रूप से स्पष्टीकरण की सद्भावी प्रकृति पर निर्भर होगा । यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदक द्वारा कोई उपेक्षा नहीं बरती गई और विलंब क्षमा किए जाने के लिए दर्शित कारण असद्भावी प्रतीत नहीं होते, तो वह न्यायालय विलंब को क्षमा कर सकता है । इसके विपरीत यदि आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या यह पाया जाता है कि वह अपने मुकदमे के अभियोजन में पूर्णतया उपेक्षावान था, तो यह विवेकाधिकार का विधिसम्मत प्रयोग होगा कि विलंब को क्षमा न किया जाए ।

25. चकबंदी अधिकारी ने मामले के प्रत्येक पहलू पर विचारोपरांत अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों को चकबंदी के बारे में जानकारी थी और उन्होंने कुछ अन्य भूखंडों के संबंध में, सिवाए

---

[1] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1629.

विवादित भूखंड अर्थात् भूखंड संख्या 97 के, चक के आबंटन को लेकर मुकदमेबाजी का अनुगमन इस न्यायालय तक किया और प्रत्यर्थी संख्या 1 को चकबंदी समिति का सदस्य होने के नाते चकबंदी क्रियान्वयन के बारे में जानकारी भी थी और इसलिए आक्षेप फाइल किए जाने में असामान्य रूप से कारित 24 वर्ष के विलंब का पर्याप्त स्पष्टीकरण बिल्कुल भी नहीं दिया गया । प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया गया और वे पूर्ण रूप से मामले के अभियोजन में असावधान थे ।

26. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए चकबंदी उपनिदेशक द्वारा पारित आदेश विधि के अंतर्गत वांच्छित प्रतिपादना के सर्वथा विपरीत है और आक्षेपित आदेश मामले के विधिक पहलुओं पर विचार किए बिना पारित किया गया है । चकबंदी उपनिदेशक ने प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थियों की तरफ से बिना कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए बिना फाइल किए गए आक्षेपों के आधार पर विलंब को क्षमा कर दिया है ।

27. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए 2014 पुनरीक्षण संख्या 1090 और 1091 में इलाहाबाद के चकबंदी उपनिदेशक द्वारा पारित तारीख 22 अप्रैल, 2014 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है और अधिनियम की धारा 9 के अधीन वाद संख्या 351/820 में इलाहाबाद के सराओं के चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित तारीख 11 नवंबर, 2011 के आदेश को मान्य ठहराया जाता है ।

28. परिणामस्वरूप, रिट याचिका सफल होती है और मंजूर की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

प्रबंध समिति, किसान माध्यमिक महाविद्यालय, अजौसी, जिला जौनपुर द्वारा प्रबंधक और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 17980)

तारीख 26 नवंबर, 2019

न्यायमूर्ति प्रकाश पांडिया

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा (अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन का संदाय) अधिनियम, 1972 – धारा 21 [सपठित राष्ट्रीय इलेक्ट्रानिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी संस्था (एन. आई. ई. एल. आई. टी.) द्वारा संचालित कंप्यूटर अवधारणा पाठ्यक्रम प्रमाणपत्र (सी. सी. सी. प्रमाणपत्र) योजना] – अभ्यर्थी को प्रोन्नति के लिए सरकारी आदेश में उल्लिखित अपेक्षित अर्हता का धारक पाया जाना – अभ्यर्थी प्रोन्नति का हकदार है और उसे प्रोन्नति प्रदान किए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

संक्षेप में तथ्य, जो इस रिट याचिका में समाविष्ट हैं, ये हैं कि प्रश्नगत संस्था अर्थात् जिला जौनपुर के अजोसी में स्थित किसान माध्यमिक विद्यालय एक मान्यता प्राप्त संस्था है और हाई स्कूल स्तर तक सहायता प्राप्त है । यह संस्था 1921 के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम की उपबंधों के अधीन शासित है । इस संस्था के समस्त अध्यापक और कर्मचारी 1972 के उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और माध्यमिक शिक्षा (अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन का संदाय) अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् '1972 का अधिनियम' कहा गया है) के उपबंधों के अनुसार राज्य के राजकोष से वेतन प्राप्त करते हैं । संस्था में राज्य सरकार द्वारा प्रधानाध्यापक और अध्यापकों के पदों के अतिरिक्त सहायक लिपिक का एक पद और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारियों के

चार पद स्वीकृत थे । श्री राम सिंह, जो सहायक लिपिक के रूप में कार्यरत थे, तारीख 28 फरवरी, 2018 को सेवानिवृत्त हो गए । इस पद को भरे जाने के क्रम में कार्रवाही आरंभ की गई । प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 17 अप्रैल, 2019 को पारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 5 अर्थात् संतोष कुमार यादव को सहायक लिपिक के पद पर प्रोन्नत किया गया । पूर्वोक्त आदेश वर्तमान याचियों द्वारा फाइल की गई 2019 की रिट अपील संख्या 7233 (सी/एम किसान माध्यमिक महाविद्यालय, जौनपुर और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) वाले मामले की विषयवस्तु था । उपरोक्त रिट याचिका का निस्तारण तारीख 9 मई, 2019 के निर्णय और आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कर दिया गया कि प्रत्यर्थी संख्या 5/अभ्यर्थी विधिमान्य सी. सी. सी. प्रमाणपत्र धारक है और उसकी प्रोन्नति के लिए याची विधि अनुसार नया आदेश पारित करे । प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पूर्वोक्त आदेश के मतावलंबन में, प्रत्यर्थी संख्या 5/अभ्यर्थी की टंकण परीक्षा का आयोजन किए जाने के प्रयोजनार्थ कार्यवाही आरंभ की गई । अभिलेख के परिशीलन से स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याचियों को तारीख 2 अगस्त, 2019 का पत्र लिखा, जिसके द्वारा उन्होंने याचियों को तारीख 12 अगस्त, 2019 को अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया, ताकि प्रत्यर्थी संख्या 5/अभ्यर्थी की टंकण परीक्षा उनकी उपस्थिति में आयोजित हो सके । यह दलील दी गई कि इसके बावजूद, निर्धारित तारीख पर प्रत्यर्थी संख्या 3 के कार्यालय में टंकण परीक्षा के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा यह विनिश्चय किया गया कि जिला जौनपुर के सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के भारसाधक प्रधानाध्यापक श्री रमेश यादव के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या 5/अभ्यर्थी की टंकण परीक्षा आयोजित की जाए । प्रत्यर्थी संख्या 5/अभ्यर्थी की टंकण परीक्षा तारीख 10 अक्तूबर, 2019 को आयोजित की गई । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा आक्षेपित आदेश तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को यह अभिकथित करते हुए पारित किया गया कि चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 5 ने अपनी टंकण परीक्षा पहले ही उत्तीर्ण कर ली है, इसलिए वह प्रोन्नति का हकदार है । प्रत्यर्थी

संख्या 3 ने तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को पारित आदेश को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि चतुर्थ वर्ग के पद से तृतीय वर्ग के पद पर प्रोन्नति के लिए अपेक्षित अर्हता तारीख 23 अगस्त, 2016 और 9 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों में उल्लिखित है । प्रोन्नति के लिए प्रथम अपेक्षित अर्हता हिन्दी या अंग्रेजी, दोनों में से किसी एक भाषा में 25 से 30 शब्द प्रति मिनट के मध्य टंकण परीक्षा/गति है और दोनों भाषाओं में नहीं और प्रोन्नति के लिए द्वितीय अपेक्षित अर्हता डी. ओ. ई. ए. सी. सी. द्वारा जारी सी. सी. सी. प्रमाणपत्र है । जहां तक प्रथम अपेक्षा का संबंध है अर्थात् पूर्वाक्त टंकण परीक्षा/गति, जैसा कि सरकारी आदेशों के अधीन यथाविहित है, टकंण परीक्षा/गति के बाबत विशिष्ट निष्कर्ष प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पहले ही आक्षेपित आदेश में विशिष्ट निष्कर्ष के रूप में अभिलिखित किए जा चुके हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 5 की हिन्दी में प्रति मिनट टंकण गति 26.8 शब्द है, जो सरकारी आदेशों के अनुसार अपेक्षित टंकण गति है अर्थात् 25 से 30 शब्द प्रति मिनट के मध्य । जैसा कि ऊपरवर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 की तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों के अधीन यथाविहित टंकण गति है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी संख्या 5 विधिमान्य "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र धारक भी है, जो राष्ट्रीय इलेक्ट्रानिक्स संस्थान और सूचना प्रौद्योगिकी (एन. आई. ई. एल. आई. टी.) द्वारा सम्यक् रूप से जारी किया गया है । याचियों के काउंसेल द्वारा पूर्वाक्त दलीलों के अतिरिक्त कोई अन्य दलील नहीं दी गई । पूर्वाक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को पारित आदेश पूर्णतया न्यायसंगत और उचित है और इस न्यायालय द्वारा इस आदेश में किसी भी प्रकार का मध्यक्षेप, विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, अपेक्षित नहीं है । (पैरा 11, 12 और 13)

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 17980.

भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थी की ओर से श्री जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री राकेश कुमार, स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति प्रकाश पांडिया – याची की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री जे. के. श्रीवास्तव को सुना । विद्वान् स्थायी काउंसेल ने प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 की ओर से नोटिस स्वीकार किया और श्री राकेश कुमार, विद्वान् काउंसेल ने प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से नोटिस स्वीकार किया ।

2. याची ने वर्तमान रिट याचिका जौनपुर के प्रत्यर्थी संख्या 3/जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की है जिसकी प्रति रिट याचिका के उपाबंध संख्या 14 के रूप में संलग्न है ।

3. संक्षेप में तथ्य, जो इस रिट याचिका में समाविष्ट हैं, ये हैं कि प्रश्नगत संस्था अर्थात् जिला जौनपुर के अजोसी में स्थित किसान माध्यमिक विद्यालय एक मान्यताप्राप्त संस्था है और हाई स्कूल स्तर तक सहायता प्राप्त है । यह संस्था 1921 के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम की उपबंधों के अधीन शासित है । इस प्रश्नगत संस्था के समस्त अध्यापक और कर्मचारी 1972 के उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और माध्यमिक शिक्षा (अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन का संदाय) अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् '1972 का अधिनियम' कहा गया है) के उपबंधों के अनुसार राज्य के राजकोष से अपना वेतन प्राप्त करते हैं । प्रश्नगत संस्थान में राज्य सरकार द्वारा प्रधानाध्यापक और अध्यापकों के पदों के अतिरिक्त सहायक लिपिक का एक पद और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारियों के चार पद स्वीकृत थे । श्री राम सिंह, जो सहायक लिपिक के रूप में कार्यरत थे, तारीख 28 फरवरी, 2018 को सेवानिवृत्त हो गए थे । पूर्वोक्त पद को भरे जाने के क्रम में कार्यवाही आरंभ की गई थीं । प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 17 अप्रैल, 2019 को पारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 5 अर्थात् संतोष कुमार यादव को सहायक

लिपिक के पद पर प्रोन्नत किया गया था । पूर्वोक्त आदेश वर्तमान याचियों द्वारा फाइल की गई 2019 की रिट अपील संख्या 7233 (**सी/एम किसान माध्यमिक महाविद्यालय, जौनपुर और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**) वाले मामले की विषयवस्तु था । पूर्वोक्त रिट याचिका का निस्तारण तारीख 9 मई, 2019 के निर्णय और आदेश द्वारा अंतिम रूप से कर दिया था । तारीख 9 मई, 2019 के आदेश को नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

> "याचियों के काउंसेल श्री जे. के. श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 के विद्वान् स्थायी काउंसेल और प्रत्यर्थी संख्या 5 के काउंसेल श्री विद्याधर यादव जिसकी तरफ से मामले का वृत्तांत श्री विमल कुमार धारण कर रहे हैं, को सुना । उनकी सहमति से वर्तमान याचिका में कोई औपचारिक प्रतिशपथपत्र आमंत्रित किए बिना अंतिम रूप से विनिश्चय किया जा रहा है ।
>
> जौनपुर स्थित किसान माध्यमिक विद्यालय की प्रबंध समिति, जो वर्तमान मामले में याची है, ने तृतीय प्रत्यर्थी ने जौनपुर के जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा तारीख 15/17 अप्रैल, 2019 को पारित आदेश जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 5 के तारीख 8 जनवरी, 2019 के प्रत्यावेदन को मंजूर कर लिया गया और उसको संस्थान में सहायक लिपिक के रिक्त पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए निर्देश जारी कर दिया गया, की शुद्धता को चुनौती देते हुए वर्तमान याचिका फाइल की है । इस आदेश में यह अभिलिखित किया गया है कि संस्थान में सहायक लिपिक का एकमात्र पद तारीख 28 फरवरी, 2018 को राम आशीष यादव की सेवानिवृत्ति के परिणामस्वरूप रिक्त हो गया था । प्रत्यर्थी संख्या 5 वरिष्ठतम वर्ग 4 के कर्मचारी हैं जो वर्ग 3 के लिए अपेक्षित अर्हता रखता है । तद्नुसार, उसे 1921 के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम के अन्तर्गत विरचित विनियमों के अध्याय 3 के विनियम 2(2) को दृष्टिगत करते हुए प्रोन्नति दिए जाने के लिए निर्देशित किया गया है ।

याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि याचियों ने तारीख 3 अप्रैल, 2019 के अपने आवेदन में विशिष्ट रूप से बताया है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 सी. सी. सी. प्रमाणपत्र धारक नहीं है और उसको टंकण का ज्ञान भी नहीं है, जैसा कि तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेश के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से अपेक्षित है । उसने यह आगे निवेदन किया है कि इन सरकारी आदेशों की वैधता को 2018 की रिट अपील संख्या 23580 में इस न्यायालय के तारीख 22 नवंबर, 2018 के निर्णय द्वारा मान्य ठहराया गया है ।

प्रत्यर्थी संख्या 5 के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी संख्या 5 सी. सी. सी. प्रमाणपत्र धारक है । उसने यह भी निवेदन किया कि उसके पास टंकण का ज्ञान भी है । तथापि, उसने इस बात को स्वीकार किया कि टंकण परीक्षा का आयोजन अभी तक नहीं किया गया है ।

राज्य प्रत्यर्थियों की ओर से पेश हुए विद्वान् स्थायी काउंसेल ने बताया कि तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों के अनुसार प्रोन्नति की ईप्सा करने वाले कर्मचारियों की हिन्दी/अंग्रेजी में टंकण की 25/30 शब्दों की गति होनी चाहिए ।

पक्षकारों के मध्य यह विवादित न होने के कारण कि इसके पूर्व कि प्रोन्नति मंजूर की जा सकती, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए था कि क्या कर्मचारी की तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों के अधीन यथाविहित टंकण की गति थी, किन्तु हमारे समक्ष उपस्थित मामले में ऐसा नहीं किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है । याचिका प्रबंधतंत्र और जिला विद्यालय निरीक्षक को इस निर्देश के साथ निस्तारित की जाती है कि वे टंकण परीक्षा आयोजित करें और यह भी सुनिश्चित करें कि क्या प्रत्यर्थी संख्या 5 विधिमान्य सी. सी. सी. प्रमाणपत्र का धारक है और तत्पश्चात् विधि अनुसार नया आदेश पारित करें ।"

4. प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पूर्वोक्त आदेश के मतावलंबन में, प्रत्यर्थी संख्या 5 की टंकण परीक्षा का आयोजन किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा कार्यवाही आरंभ की गई । अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याचियों को तारीख 2 अगस्त, 2019 का एक पत्र लिखा, जिसके द्वारा उन्होंने याचियों को तारीख 12 अगस्त, 2019 को अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया, ताकि प्रत्यर्थी संख्या 5 की टंकण परीक्षा उनकी उपस्थिति में आयोजित हो । यह दलील दी गई कि इन सबके बावजूद, कोई भी निर्धारित तारीख पर प्रत्यर्थी संख्या 3 के कार्यालय में उपस्थित नहीं हुआ । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा यह विनिश्चय किया गया कि जिला जौनपुर के सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के भारसाधक प्रधानाध्यापक श्री रमेश यादव के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या 5 की टंकण परीक्षा आयोजित की जाए । प्रत्यर्थी संख्या 5 की टंकण परीक्षा तारीख 10 अक्तूबर, 2019 को आयोजित की गई । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा आक्षेपित आदेश तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को यह अभिकथित करते हुए पारित किया गया कि चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 5 ने अपनी टंकण परीक्षा पहले ही उत्तीर्ण कर ली है, इसलिए वह प्रोन्नति का हकदार है । प्रत्यर्थी संख्या 3 ने तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को पारित आदेश को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी है ।

5. याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलीलें दी गई हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को पारित आदेश पूर्णतया अवैध आदेश है और तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 अक्तूबर, 2017 के सरकारी आदेशों के विपरीत पारित किया गया है । उन्होंने आगे दलील दी कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने प्रत्यर्थी संख्या 5 की टंकण परीक्षा अत्यंत मनमाने ढंग से आयोजित की है और टंकण परीक्षा प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा उपलब्ध कराए गए टाइप राइटर पर आयोजित की गई थी । उन्होंने आगे यह दलील दी कि केवल हिन्दी की टंकण परीक्षा संचालित की गई, जबकि हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में टंकण परीक्षाएं आयोजित किया जाना अपेक्षित होता है । उन्होंने आगे दलील

दी कि किसी भी समयबिंदु पर याचियों को प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा सी. सी. सी. प्रमाणपत्र उपलब्ध नहीं कराया गया था और इस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी संख्या 5 सी. सी. सी. प्रमाणपत्र धारक है, पूर्णतया गलत है । याचियों के काउंसेल ने 2008 की रिट अपील संख्या 23580 (**सुधांषु त्यागी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और चार अन्य**) वाले मामले में इस न्यायपीठ की समकक्ष न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया, जिसकी प्रति रिट याचिका के संलग्नक 5 के रूप में संलग्न है । पूर्वोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, यह दलील दी कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

6. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री राकेश कुमार द्वारा यह दलील दी गई है कि तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पूर्णरूपेण न्यायसंगत आदेश है और यह आदेश तारीख 23 अगस्त, 2016 और तारीख 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेश में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार पारित किया गया है । प्रत्यर्थी संख्या 5 के विद्वान् काउंसेल श्री राकेश कुमार ने यह दलील भी दी कि प्रोन्नति के प्रयोजनार्थ पूर्वोक्त सरकारी आदेशों द्वारा, डी. ओ. ई. ए. सी. सी. सोसाइटी से प्राप्त सी. सी. सी. प्रमाणपत्र और न्यूनतम 25 से 30 शब्द प्रति मिनट की गति के साथ हिन्दी/अंग्रेजी टंकण का ज्ञान आवश्यक किया गया है । प्रत्यर्थी संख्या 5 की हिन्दी में 26.8 शब्द प्रति मिनट की टंकण की गति पर्याप्त है और वह विधिमान्य "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र धारक भी है । तारीख 23 अगस्त, 2016 और तारीख 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों को नीचे उद्धृत किया गया है :-

"प्रेषक,

जितेन्द्र कुमार
प्रमुख सचिव
उत्तर प्रदेश शासन ।

सेवा में,

1. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)
2. वित्त नियंत्रक,
उत्तर प्रदेश लखनऊ/इलाहाबाद ।
शिक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ।
शिक्षा (8) अनुभाग लखनऊ : तारीख 23 अगस्त, 2016

विषय – वेतन समिति (2008) के 11वें प्रतिवेदन के माध्यम से अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षणेत्तर कर्मचारियों (लिपिक संवर्ग) के वेतन पुनरीक्षण के संबंध में ।

महोदय,

1. उपर्युक्त विषयक शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) उत्तर प्रदेश के पत्रांक-शिविर/19878/2015-16, तारीख 28 मार्च, 2016 के क्रम में पूर्व निर्गत शासनादेश संख्या 1468/15-8-2015-3011/2009 टी. सी. तारीख 3 नवम्बर, 2015 को निरस्त करते हुए मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि वेतन समिति (2008) के ग्यारहवें प्रतिवेदन के माध्यम से सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं, प्राविधिक शिक्षण संस्थाओं के शिक्षणेत्तर कर्मचारियों सामान्य संवर्ग तथा अन्य संवर्ग के संबंध में की गई संस्तुतियों के क्रम मे वित्त विभाग द्वारा निर्गत शासनादेश संख्या-वसे.आ.-2-665 (11)/दस-54 (एम)/2008 टी.सी. तारीख 26 सितंबर, 2013 द्वारा लिपिकीय संवर्ग के प्रथम स्तर का पदनाम राजकीय विभागों की भांति कनिष्ठ सहायक करते हुए वेतन बैण्ड-1 रुपए 5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रुपए 2000 तत्काल प्रभाव से अनुमन्य किया जाए । इसी प्रकार लिपिकीय संवर्ग के द्वितीय स्तर का पदनाम राजकीय विभागों की भांति वरिष्ठ सहायक करते हुए वेतन बैण्ड-1 रुपए 5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रुपए 2800 तत्काल प्रभाव से अनुमन्य किया जाए ।

2. उक्त निर्णयानुसार विभाग के लिपिकीय संवर्ग का पुनर्गठन करते हुए लिपिकीय संवर्ग के प्रथम स्तर से पद का पदनाम कनिष्ठ सहायक करते हुए वेतन बैण्ड-1 रुपए 5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रुपए

2000 तथा लिपिकीय संवर्ग के द्वितीय स्तर के पद का पदनाम वरिष्ठ सहायक करते हुए वेतन बैण्ड-1 रुपए 5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रुपए 2800 तारीख 26 सितम्बर, 2013 से इस प्रतिबंध के अधीन अनुमन्य किया जाता है कि इन पदों पर अर्हता/भर्ती की विधि निम्न तालिका के अनुसार निर्धारित की जाएगी ।

वर्तमान ढांचा				पुनर्गठित ढांचा		
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.
क्र. सं.	पदनाम	वेतन बैण्ड एवं ग्रेड वेतन (रु.)	भर्ती की विधि	पदनाम	वेतन बैण्ड एवं ग्रेड वेतन (रु.)	भर्ती की विधि
	नैत्यिक लिपिक/ कर्णिक	950-1500-5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रु. 1900	**शैक्षिक अर्हता-** इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16 (छ) विनियम 2(1) के अन्तर्गत किसी संस्था में नियुक्ति हेतु लिपिक की न्यूनतम शैक्षिक अर्हता वही होगी जो राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के समकक्षीय कर्मचारियों के लिए समय-समय पर निर्धारित की गई है ।	कनिष्ठ सहायक	5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रु. 2000	80 प्रतिशत सीधी भर्ती द्वारा । अर्हता इण्टरमीडिएट के साथ-साथ कम्प्यूटर संचालन का डोयक सोसाइटी द्वारा प्रदत्त सी.सी.सी. प्रमाणपत्र तथा हिन्दी/अंग्रेजी में कम से कम 25/30 शब्द प्रति मिनट की टंकण गति । 15 प्रतिशत चतुर्थ श्रेणी के ऐसे कार्मिकों से

			भर्ती की विधि- इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 1921 के अध्याय 3 विनियम 101 में शिक्षेणत्तर पदों की भर्ती विषयक व्यवस्था है जिसके अनुसार नियुक्ति प्राधिकारी निरीक्षक नियुक्ति प्राधिकारी निरीक्षक के पूर्वानुमोदन के सिवाय किसी मान्यताप्राप्त सहायता प्राप्त संस्था के शिक्षणेत्तर स्टाफ में किसी रिक्ति को नहीं भरेगा। इण्टर स्तरीय विद्यालय में लिपिक के सृजित पदों के सापेक्ष 50 प्रतिशत चतुर्थ श्रेणी अर्ह कर्मचारी की पदोन्नति			पदोन्नति द्वारा जो हाईस्कूल हों तथा टंकण ज्ञान रखते हों। 5 प्रतिशत पद चुतर्थ श्रेणी के ऐसे कर्मिकों से पदोन्नति द्वारा जो इण्टरमीडिएट हो तथा टंकण ज्ञान रखते हों।

			करके लिपिक के पदों को भरे जाने की व्यवस्था है । टिप्पणी 50 प्रतिशत पदों की संगणना करने में आधे से कम भाग को छोड़ दिया जाएगा और आधे या आधे से अधिक भाग को एक समझा जाएगा । शासनादेश तारीख 20 नवम्बर, 1976 द्वारा निर्धारित ढांचा अद्यतन प्रवृत्त है । अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालय के लिपिक संवर्ग का पुनर्गठित ढ़ांचा नहीं है । प्रश्नगत लिपिक संवर्ग के भर्ती की विधि एवं चयन प्रक्रिया नियमावली अद्यतन प्रख्यापित नहीं है ।			

2.	प्रधान कर्णिक अथवा प्रधान लिपिक	1200-2040(5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रु. 2400)	**शैक्षिक अर्हता एवं भर्ती की विधि-** अशासकीय सहयता प्राप्त माध्यमिक विद्यालय (हाईस्कूल स्तरीय) में लिपिक का पद एकल है । इण्टर स्तरीय विद्यालय में ही प्रधान लिपिक का पद सृजित है । प्रधान लिपिक का पद शत प्रतिशत पदोन्नति का है । इण्टर स्तरीय विद्यालय में लिपिक श्रेणी में सृजित पदों के सापेक्षर कार्यरत लिपिक की पदोन्नति उपर्युक्तता एवं ज्येष्ठता के आधार पर प्रधान लिपिक के पद पर की जाती है ।	वरिष्ठ सहायक	5200-20200 एवं ग्रेड वेतन रु. 2800	शत प्रतिशत पदोन्नति द्वारा-5 वर्ष की सेवा वाले कनिष्ठ सहायक के पदों से ।

4. उपर्युक्त पुनर्गठन के फलस्वरूप उच्चीकृत ग्रेड वेतन के सापेक्ष समायोजित होने वाले पदधारकों का वेतन निर्धारण वित्त विभाग के

शासनादेश सं. वे.आ.-2-841/दस-2009-59 (एस)/2008 तारीख 24 दिसम्बर, 2009 में वर्णित व्यवस्था के अनुसार किया जाएगा ।

5. उपर्युक्त व्यवस्था के समावेश संबंधित विषय के विनियमावली में यथाशीघ्र कर लिया जाएगा । उपरोक्तानुसार पुनर्गठन करने के फलस्वरूप वर्तमान में विद्यालयों में उपलब्ध पदों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होगा ।

6. यह आदेश वित्त विभाग के अशासकीय संख्या वेआ.-2-431/दस-2015 तारीख 16 अप्रैल, 2015 में प्राप्त उनकी सहमति से निर्गत किया जा रहा है ।

भवदीय
हस्ताक्षर अपठनीय
(जितेन्द्र कुमार)
प्रमुख सचिव

"प्रेषक,

जितेन्द्र कुमार
प्रमुख सचिव
उत्तर प्रदेश शासन ।

सेवा में,

1. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)
उत्तर प्रदेश लखनऊ/ इलाहाबाद

2. वित्त नियन्त्रक
शिक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश
इलाहाबाद ।

शिक्षा (8) अनुभाग लखनऊ तारीख, 4 जनवरी, 2017

विषय - उत्तर प्रदेश के अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में कनिष्ठ सहायक के पदों पर चतुर्थ श्रेणी के पदों से पदोन्नति की व्यवस्था के संबंध में ।

महोदय,

1. उपर्युक्त विषयक शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उत्तर प्रदेश के पत्रांक - शिविर/18491/2015-16 तारीख 29 फरवरी, 2016 का संदर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें, जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश के अशासकीय

सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में कनिष्ठ सहायक के पदों पर चतुर्थ श्रेणी के पदों से पदोन्नति की व्यवस्था विषयक अनुरोध के क्रम में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि वेतन समिति (2008) के ग्यारहवें प्रतिवेतन के माध्यम से अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के संबंध में शासनादेश संख्या-1067/15-8-2016-3011/2009 टी. सी. तारीख 23 अगस्त, 2016 के प्रस्तर-2 की तालिका के स्तम्भ-7 में भर्ती की विधि की वर्तमान व्यवस्था के सम्बंध में निम्नलिखित व्यवस्था किए जाने की श्री राज्यपाल सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं :-

(1) अर्हता	50 प्रतिशत सीधी भर्ती द्वारा इण्टरमीडिएट के साथ-साथ कम्प्यूटर संचालन का "डोयक" सोसाइटी द्वारा प्रदत्त "सी.सी.सी." प्रमाणपत्र तथा हिन्दी/अंग्रेजी में कम से कम 25/30 शब्द प्रति मिनट की टंकण गति ।
(2)	प्रतिशत चतुर्थ श्रेणी के ऐसे पदधारों से पदोन्नति द्वारा जो सीधी भर्ती की अर्हता रखते हो और 5 वर्ष की मौलिक सेवा पूर्ण कर चुके हो और उनका सेवा अभिलेख अच्छा हो ।

2. उत्तर प्रदेश अशासकीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में कनिष्ठ सहायक के पदों पर और चतुर्थ श्रेणी के पदों पर सीधी भर्ती/पदोन्नति के संबंध में शासनादेश संख्या-1067/15-8-2016-3011/2009 टी. सी. तारीख 23 अगस्त, 2016 में की गई व्यवस्था को उक्त सीमा तक संशोधित एवं अवक्रमित समझा जाए ।

3. यह आदेश वित्त विभाग के अशासकीय संख्या बे.आ.-2-2928/दस-2016 तारीख 4 जनवरी, 2017 में प्राप्त उनकी सहमति से निर्गत किए जा रहा है ।

भवदीय
हस्ताक्षर अपठनीय
(जितेन्द्र कुमार)
प्रमुख सचिव"

7. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, यह तर्क दिया गया कि पूर्वोक्त सरकारी आदेशों के अनुसार, हिन्दी या अंग्रेजी, दोनों में से किसी एक में टंकण परीक्षा/गति का होना अपेक्षित है और दोनों भाषाओं में अपेक्षित नहीं है । यह दलील भी दी गई कि याचियों द्वारा फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 3 को सुनिश्चित करने के लिए निर्देश दिए गए थे कि क्या प्रत्यर्थी संख्या 5 की टाइपिंग की वही गति है, जैसी कि तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों के अंतर्गत यथाविहित है और क्या प्रत्यर्थी संख्या 5 विधिमान्य "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र धारक है । याचियों द्वारा फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 5 की टंकण परीक्षा संचालित किए जाने के द्वारा पूर्ण रूप से अनुपालन किया गया था । आक्षेपित आदेश में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा अपने निष्कर्षों को अभिलिखित किया गया कि प्रत्यर्थी संख्या 5 विधिमान्य "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र धारक है । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी संख्या 5 के काउंसेल द्वारा मूल "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है । उसके परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (एन. आई. ई. एल. आई. टी.) द्वारा जारी कंप्यूटर अवधारणा पाठ्यक्रम (सी. सी. सी.) का प्रमाणपत्र धारक है । इस प्रमाण की एक फोटो कॉपी याचियों के काउंसेल को उपलब्ध कराई गई है और उसकी एक फोटो कॉपी को अभिलेख पर भी किया गया है । उसके परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (एन. आई. ई. एल. आई. टी.) द्वारा सम्यक् रूप से जारी विधिमान्य "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र का धारक है ।

8. इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा 2017 की विशेष अपील (त्रुटि) संख्या 679 (**संजय कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और दो अन्य**) वाले माले में तारीख 6 मई, 2019 को निर्णीत करते हुए पहले ही अभिनिर्धारित कर दिया है कि कंप्यूटर अवधारणा पाठ्यक्रम (सी. सी. सी.) को आरंभिक स्तर की कंप्यूटर साक्षरता को पूरा करने के लिए

डिजाइन किया गया है और यह किसी व्यक्ति द्वारा अपने स्तर पर भी किया जा सकता है । आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक मात्र अपेक्षा यह की गई है कि उसके द्वारा अपने स्तर पर कम्प्यूटर अवधारणा पाठ्यक्रम पूर्ण किए जाने को एन. आई. ई. एल. आई. टी (जिसे पूर्व में "डी. ओ. ई. ए. सी. सी. सोसाइटी" के नाम से जाना जाता था) द्वारा सत्यापित कराना चाहिए । यह पाठ्यक्रम कंप्यूटर एप्लीकेशन में सुविज्ञता नहीं हैं, बल्कि कंप्यूटर संचालन के लिए केवल अत्यंत प्रारंभिक ज्ञान है । सी. सी. सी. प्रमाणपत्र उन व्यक्तियों के लिए भी उपलब्ध है, जो औपचारिक रूप से शिक्षिता नहीं हैं । पूर्वाक्त निर्णय के सुसंगत भाग को नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :–

> "हमने इस अपील में सी. सी. सी. प्रमाणपत्र की प्रकृति सहित संपूर्ण विवाद्यकों की जांच की है । एन. आई. ई. एल. आई. टी. की शासकीय वैबसाइट पर उपलब्ध ब्यौरे के अनुसार, कंप्यूटर अवधारणा सी. सी. सी. पाठ्यक्रम का ब्यौरा इस प्रकार है" –
>
> "**प्रस्तावना** – यह पाठ्यक्रम सामान्यजनों के लिए आधारी स्तर के प्रौद्योगिकी साक्षरता कार्यक्रम के अन्तर्गत आधारी स्तर की सूचना प्रौद्योगिकी साक्षरता प्रदान करने के लिए तैयार किया गया है । यह कार्यक्रम सामान्यजनों को अवसर प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ अनिवार्यतः इस विचार के अन्तर्गत तैयार किया गया है ताकि वे कंप्यूटर साक्षरता प्राप्त कर सकें जिससे कि वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अधिक और तीव्रवृद्धि के साथ कम्प्यूटर का लाभ उठा सके । अभ्यर्थी को इस पाठ्यक्रम को पूर्ण करने के पश्चात् अपने निजी/कारबार संबंधी पत्रों को तैयार करने, इंटरनेट (वेब) पर विद्यमान जानकारी को देखने, ई-मेल प्राप्त करने/भेजने, अपनी कारबार संबंधी प्रस्तुतीकरणों को तैयार करने और लघु डाटाबेस तैयार करने इत्यादि के जैसे मूलभूत प्रयोजनों के लिए कंप्यूटर का उपयोग करने के समर्थ होना चाहिए । यह पाठ्यक्रम लघु कारबार समुदायों, गृहणियों आदि को कंप्यूटर का उपयोग करके अपने लघु खाते बनाने में सहायता करता है और इस प्रकार

वे सूचना प्रौद्योगिकी जगत का लाभ उठा सकते हैं । अतः, इस पाठ्यक्रम को इस प्रकार से तैयार किया गया है कि वह अधिकाधिक व्यवहारोन्मुख हो ।

पात्रता : अभ्यर्थी एन. आई. ई. एल. आई. टी. द्वारा संचालित सी. सी. सी. परीक्षा में निम्नलिखित तीन माध्यमों में उपस्थित हो सकते हैं और प्रत्येक माध्यम के लिए पात्रता मापदंडों को प्रत्येक के सामने दर्शित किया गया हैं :

2.1 एन. आई. ई. एल. आई. टी. द्वारा अनुमोदित संस्थाओं द्वारा प्रयोजित अभ्यर्थियों, जिन्हें सी. सी. सी पाठ्यक्रम संचालित करने के अनुज्ञा प्रदान की गई है - कोई भी शैक्षणिक अर्हता;

2.2 सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालयों/ महाविद्यालयों द्वारा प्रायोजित अभ्यर्थियों जिन्होंने सी. सी. सी. संचालित करने के लिए एन. आई. ई. एल. आई. टी. से विशिष्ट पहचान संख्या अभिप्राप्त कर लिया है – कोई भी शैक्षणिक अर्हता, और

2.3 प्रत्यक्ष अभ्यर्थी जिन्होंने मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम को अनिवार्य रूप से पूर्ण नहीं किया है या जिनको मान्यता प्राप्त विद्यालय/महाविद्यालय द्वारा प्रायोजित नहीं किया है - कोई भी शैक्षणिक अर्हता;

समयावधिः पाठ्यक्रम की सम्पूर्ण समयावधि 80 घंटे है, जिसमें निम्नलिखित समाविष्ट होंगे :

(1) थ्योरी 25 घंटे

(2) शिक्षकीय 5 घंटे

(3) प्रयोगात्मक 50 घंटे

इस पाठ्यक्रम में गहन पाठ्यक्रम आदर्शतः दो सप्ताह के लिए किया जा सकता है ।"

ऊपर उद्धृत प्रस्तावना से यह उपदर्शित होता है कि कम्प्यूटर अवधारणाओं संबंधी पाठ्यक्रम (सी. सी. सी.) को आरंभिक स्तर की कम्प्यूटर साक्षरता की आवश्यकता को पूरा करने के लिए तैयार किया गया है और यह पाठ्यक्रम कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने स्तर पर पूर्ण कर सकता है इसकी एक मात्र अपेक्षा यह है कि उसके द्वारा अपने स्तर पर कम्प्यूटर अवधारणा पाठ्यक्रम पूर्ण किए जाने को एन. आई. ई. एल. आई. टी. (जिसे पूर्व में "डी. ओ. ई. ए. सी. सी." सोसाइटी के रूप जाना जाता था) से सत्यापन प्राप्त होना चाहिए । यह पाठ्यक्रम कंप्यूटर के उपयोजन में किसी विशेषज्ञता के लिए नहीं है अपितु इसमें मुख्यत कंप्यूटर के प्रचालन से संबंधित आरंभिक जानकारी सम्मलित है । सी. सी. सी. प्रमाणपत्र ऐसे व्यक्तियों के लिए भी उपलब्ध है जिनके पास किसी प्रकार की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है । वस्तुतः, यह कंप्यूटर साक्षरता की ओर पहला कदम है । "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र को पात्रता में सम्मिलित करने का एक मात्र प्रयोजन यह है कि प्रार्थी कंप्यूटर को प्रति जागरूक होना चाहिए और कंप्यूटर साक्षर भी होना चाहिए । अपीलार्थी/याची, जो कंप्यूटर एप्लीकेशन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा धारक है, के पास सी. सी. सी. के माध्यम से प्राप्त ज्ञान से कहीं अधिक ज्ञान है । अपीलार्थी-याची द्वारा अर्जित किया गया उच्च ज्ञान सी. सी. सी. प्रमाणपत्र धारण किए जाने के प्रयोजन और आवश्यकता का पूर्णत: समाधान कहता है और साथ ही सी. सी. सी. प्रमाणपत्र को धारण करने की आवश्यकता को भी पूर्ण करता है । विद्वान् एकल न्यायपीठ इस तथ्य का मूल्यांकन करने में असफल रही कि सी. सी. सी. प्रमाणपत्र धारण करने का प्रयोजन कंप्यूटर एप्लीकेशन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा की उच्चतर अर्हता धारण करने के प्रयोजन का समाधान है ।

पूर्वोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि विद्वान् एकल न्यायपीठ ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में

त्रुटि कारित की कि उन्नाव के जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 19 सितंबर, 2016 का आदेश किसी त्रुटि से ग्रषित नहीं है ।

तद्नुसार, अपील मंजूर की जाती है । तारीख 5 जनवरी, 2017 का आदेश अपास्त किया जाता है । 2016 की रिट याचिका संख्या 60818 मंजूर की जाती है । अपीलार्थी-याची की नियुक्ति को रद्द करते हुए उन्नाव के जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 19 सितम्बर, 2016 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है । याची को तारीख 19 सितंबर, 2015 के आदेश के अनुसरण में नियोजन में बने रहने की अवधि के वेतन के वास्तविक संदाय के सिवाय सभी पारणामिक लाभों के साथ उन्नाव जिला न्यायालय में आशुलिपिक, श्रेणी-3 के रूप में बहाल घोषित किया जाता है ।"

9. यही मत 2017 की रिट अपील संख्या 16106 (**अरविंद कुमार** बनाम **इलाहाबाद उच्च न्यायालय के महारजिस्ट्रार**) में इस न्यायालय की समकक्ष न्यायपीठ द्वारा भी व्यक्त किए गए ।

10. पक्षकारों के विद्वान् काउंसलों को सुना ।

11. अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि चतुर्थ वर्ग के पद से तृतीय वर्ग के पद पर प्रोन्नति के लिए अपेक्षित अर्हता तारीख 23 अगस्त, 2016 और 9 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों में उल्लेखित है । प्रोन्नति के लिए प्रथम अपेक्षित अर्हता हिन्दी या अंग्रेजी, दोनों में से किसी एक भाषा में 25 से 30 शब्द प्रति मिनट के मध्य टंकण परीक्षा/गति है और दोनों भाषाओं में नहीं और प्रोन्नति के लिए द्वितीय अपेक्षित अर्हता डी. ओ. ई. ए. सी. सी. द्वारा जारी सी. सी. सी. प्रमाणपत्र है ।

12. जहां तक प्रथम अपेक्षा का संबंध है अर्थात् पूर्वोक्त टंकण परीक्षा/गति, जैसा कि सरकारी आदेशों के अधीन यथाविहित है, टंकण परीक्षा/गति, विशिष्ट निष्कर्ष प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पहले ही आक्षेपित

आदेश में विशिष्ट निष्कर्ष के रूप में अभिलिखित किए जा चुके हैं कि प्रत्यर्थी संख्या-5 की हिन्दी में प्रति मिनट टंकण गति 26.8 शब्द है, जो सरकारी आदेशों के अनुसार अपेक्षित टंकण गति है अर्थात् 25 से 30 शब्द प्रति मिनट । जैसा कि ऊपरवर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 की तारीख 23 अगस्त, 2016 और 4 जनवरी, 2017 के सरकारी आदेशों के अधीन यथाविहित टंकण गति है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी संख्या 5 विधिमान्य "सी. सी. सी." प्रमाणपत्र धारक भी है, जो राष्ट्रीय इलेक्ट्रानिक्स संस्थान और सूचना प्रौद्योगिकी (एन. आई. ई. एल. आई. टी.) द्वारा सम्यक् रूप से जारी किया गया है । याचियों के काउंसेल द्वारा पूर्वाक्त दलीलों के अतिरिक्त कोई अन्य दलील नहीं दी गई ।

13. पूर्वाक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 19 अक्तूबर, 2019 को पारित आदेश पूर्णतया न्यायसंगत और उचित है और इस न्यायालय द्वारा इस आदेश में किसी भी प्रकार का मध्यक्षेप, विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, अपेक्षित नहीं है ।

14. यह रिट याचिका गुणागुण में रहित है और खारिज की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

याचिका खारिज की गई ।

मही./शु.

मसरुर अहमद और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(2019 की सिविल रिट याचिका संख्या 43167)

तारीख 9 जनवरी, 2020

न्यायमूर्ति पंकज मित्तल और न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 (1986 का 29) – धारा 25, 6(2) और 3(2) [ध्वनि प्रदूषण (विनियम और नियंत्रण) नियम, 2000 का नियम 5(1)] – हॉर्न, ध्वनि निष्कासित करने वाले उपकरणों, लाउडस्पीकरों और जनता को संबोधित करने वाली प्रणाली के प्रयोग पर निर्बंधन – किसी भी प्रकार के ध्वनि विस्तारक यंत्र का प्रयोग सक्षम प्राधिकारी से लिखित अनुज्ञा प्राप्त किए बिना नहीं किया जा सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि याची संख्या 1 ने जिला जौनपुर की तहसील शाहगंज के ग्राम बद्दोपुर स्थित मस्जिद अबूबकर सिद्दिकी और मस्जिद रहमानी के ऊपर नमाज के लिए अजान दिए जाने के प्रयोजनार्थ ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग की अनुज्ञप्ति/अनुज्ञा प्रदान किए जाने के लिए संबद्ध प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया था । याची संख्या 1 को तारीख 15 जनवरी, 2018 को शाहगंज के उपखंड अधिकारी, जो इस मामले में प्रत्यर्थी संख्या 4 हैं, द्वारा तारीख 15 जनवरी, 2018 से 14 जुलाई, 2018 की अवधि के लिए बद्दोपुर स्थित अबूबकर सिद्दिकी मस्जिद के ऊपर ध्वनि विस्तारक उपकरणों के प्रयोग की अनुज्ञा आदेश में उल्लिखित विनिर्दिष्ट समय पर अजान दिए जाने के लिए कतिपय शर्तों के अध्यधीन रहते हुए प्रदान कर दी । अन्य मस्जिद अर्थात् रहमानी मजिस्द के संबंध में ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग के संबंध में अभिलेख पर कोई अनुज्ञा उपलब्ध नहीं है । याचिका में यह अभिकथित किया

गया है कि एक समय-बिंदु पर उपरोक्त ध्वनि विस्तारक उपकरणों को उक्त मस्जिद से मरम्मत के लिए हटाना पड़ा था, किंतु जब उसको पुन: स्थापित किया जा रहा था, तब स्थानीय पुलिस ने याची संख्या 1 को ध्वनि विस्तारक यंत्रों को पुन: स्थापित करने से रोक दिया । तद्नुसार, याची संख्या 1 ने इस न्यायालय के समक्ष 2018 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 11840 (मसरुर अहमद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) फाइल की जिसका निस्तारण तारीख 7 मार्च, 2019 के आदेश द्वारा कर दिया गया, जिसके द्वारा याची को यह अनुमति प्रदान की गई कि वह उक्त मस्जिद में ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग के लिए विधि अनुसार अनुज्ञप्ति के नवीकरण के लिए पुन: आवेदन प्रस्तुत करें । तद्नुसार, याची ने प्रत्यर्थी संख्या 4 के समक्ष तारीख 16 मार्च, 2019 को एक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया । प्रत्यर्थी संख्या 4 ने शाहगंज के क्षेत्राधिकारी से रिपोर्ट तलब की, जिसने तारीख 9 मई, 2019 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए अभिकथित किया कि उसने तारीख 7 मार्च, 2019 को स्थल का निरीक्षण किया, जिसमें यह पाया गया कि वह क्षेत्र, जहां दोनों मस्जिदें स्थित हैं, हिंदू और मुस्लिमों की मिलीजुली आबादी है । यदि किसी भी पक्ष को ध्वनि विस्तारक यंत्रों के प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान की गई, तो दोनों धार्मिक समूहों के मध्य तनाव बढ़ेगा, जिससे क्षेत्र में शांतिभंग की आशंका है । उपखंड मजिस्ट्रेट ने भी क्षेत्राधिकारी के साथ क्षेत्र का दौरा किया और पाया कि क्षेत्र में ध्वनि विस्तारक प्रणाली के प्रयोग के कारण हिंदुओं और मुस्लिमों, दोनों धार्मिक समूहों के लोगों वाले ग्राम में अत्यधिक तनाव है । पहले भी इस आधार पर हुए विवाद के कारण गंभीर घटनाएं घटित हो चुकी हैं । इसलिए, क्षेत्र में विधि, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए यह उचित होगा कि किसी भी समूह को किसी भी धार्मिक स्थान पर ध्वनि विस्तारक प्रणाली के प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान न की जाए । तद्नुसार, जिला जौनपुर के शाहगंज के उपखंड मजिस्ट्रेट ने तारीख 12 जून, 2019 का आदेश पारित करते हुए याचियों की अनुज्ञप्ति का नवीकरण अस्वीकृत कर दिया । इसी आदेश से व्यथित

होकर याचियों ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यहां पर ध्वनि प्रदूषण के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ध्वनि प्रदूषण संदर्भ का उत्तर देते हुए दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जाना अप्रासंगिक नहीं होगा, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वाक् और अभिव्यक्ति के स्वतंत्र्य के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन किसी व्यक्ति के अधिकार अनिर्बंधित अधिकार नहीं हैं और कोई भी व्यक्ति लाउडस्पीकरों की सहायता से अपने वाक् की ध्वनि को विस्तारित किए जाने के द्वारा ध्वनिसृजित करके इस मूल अधिकार का दावा नहीं कर सकता, चूंकि प्रत्येक नागरिक को यह मूल अधिकार है कि वह शांति, सुविधा और निजता के साथ अपने घर में रहे । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा फरद के. वाडिया बनाम भारत संघ और अन्य वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि 'शांति की आवश्यकता', 'निद्रा की आवश्यकता', 'निद्रा और विश्राम के दौरान प्रक्रिया' जैविक आवश्यकताएं हैं और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं और मानवाधिकार के भाग हैं, चूंकि ध्वनि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है । आज इस बात को वैश्विक रूप से स्वीकार किया जाता है कि ध्वनि मानव स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है । इसके कारणवश सुनने की क्षमता की हानि होती है, जिसके परिणामस्वरूप बहरापन, उच्च रक्तचाप, अवसाद, थकान और यहां तक कि चिड़चिड़ापन भी होता है । आवश्यकता से अधिक ध्वनि के परिणास्वरूप हृदय संबंधी रोग, मानसिक रोग और घबराहट जैसे रोग बढ़ रहे हैं । यह साम्यापूर्ण अधिकारिता के प्रयोग का प्रमुख सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय को इसका प्रयोग करते हुए सामाजिक संतुलन को बनाए रखना चाहिए और ऐसे मामलों में मध्यक्षेप करना चाहिए, जहां आवश्यक हो और ऐसे मामलों में मध्यक्षेप करने से इनकार कर देना चाहिए जहां इसका प्रयोग सामाजिक हित और लोक व्यवस्था के विरुद्ध हो । माननीय उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम प्रभू वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि न्यायालय को सामाजिक हित में साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग करते

हुए इस अधिकारिता का प्रयोग करने की परिणामों और दुष्परिणामों पर विचार करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि क्या मध्यक्षेप करने से सामाज का सामंजस्य स्थापित होगा या मध्यक्षेप करने से इनकार करने से । माननीय उच्चतम न्यायालय ने रितेश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग आपसी सद्भाव और साम्या को प्रोन्नत किए जाने और व्यापक लोक हित में किया जाना चाहिए । पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए हमारा यह स्पष्ट मत है कि इस मामले में हमारे द्वारा असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं हैं, चूंकि हमारे द्वारा मध्यक्षेप करने के परिणामस्वरूप सामाजिक असंतुलन सृजित हो सकता है । (पैरा 29, 30, 31, 32, 33, 34 और 35)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 460 :
डा. सुब्रहमण्यम स्वामी बनाम **तमिलनाडु राज्य** ; 27

[2010] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3823 :
रितेश तिवारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 34

[2009] (2009) 2 एस. सी. सी. 442 :
फरद के. वाडिया बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 30

[2005] (2005) 8 एस. सी. सी. 796 :
ध्वनि प्रदूषण ; 29

[2000] (2000) 1 एस. सी. सी. 282 :
चर्च ऑफ गॉड (फुल गास्पेल) इन इंडिया बनाम **के. के. आर. मैजेस्टिक कालोनी वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य** ; 26

[1999] 1999 (2) ए. डब्ल्यू. सी. 1664 :
संत कुमार और अन्य बनाम **कलक्टर, सहारनपुर और अन्य** ; 28

[1994] (1994) 2 एस. सी. सी. 481 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **प्रभू** ; 33

[1975] (1975) 1 एस. सी. सी. 11 :
आचार्य महेश्वरी नरेन्द्र प्रसाद जी आनंद प्रसाद जी महाराज बनाम **गुजरात राज्य** । 24

आरंभिक रिट अधिकारिता : 2019 की सिविल रिट याचिका संख्या 43167.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री पुनीत भदोरिया और राकेश कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पंकज मित्तल ने दिया ।

न्या. मित्तल – याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री पुनीत भदौरिया और प्रत्यर्थियों के विद्वान् स्थायी काउंसेल श्री अमित वर्मा को सुना ।

2. याची, जो मुस्लिम धर्म का पालन करने वाले हैं, ने यह याचिका जिला जौनपुर के शाहगंज के उपखंड मजिस्ट्रेट, जो प्रत्यर्थी संख्या 4 हैं (जिनको रिट याचिका में भूलवश जौनपुर के पुलिस अधीक्षक, प्रत्यर्थी संख्या 3 के रूप में उल्लिखित किया गया है) द्वारा पारित तारीख 12 जून, 2019 के आदेश को अभिखंडित किए जाने के लिए फाइल की है ।

3. उक्त आदेश द्वारा धार्मिक स्थानों पर ध्वनि विस्तारकों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग के लिए प्रदान की गई अनुज्ञप्ति की अनुज्ञा/नवीकरण के प्रयोजनार्थ न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में याचियों द्वारा फाइल किए गए प्रत्यावेदनों का निस्तारण इस आधार पर किया गया कि ध्वनि विस्तारक यंत्रों के इस प्रकार के प्रयोग से ग्राम के दो धार्मिक समूहों के मध्य दुर्भावना सृजित होने की संभावना है, जिससे विधि और व्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना है ।

4. याची संख्या 1 ने मस्जिद अबूबकर सिद्दिकी और मस्जिद रहमानी, जो जिला जौनपुर की तहसील शाहगंज के ग्राम बद्दोपुर में स्थित है, के ऊपर नमाज के लिए अजान दिए जाने के प्रयोजनार्थ ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग की अनुज्ञप्ति/अनुज्ञा प्रदान किए जाने के लिए संबद्ध प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया था ।

5. याची संख्या 1 को तारीख 15 जनवरी, 2018 को शाहगंज के उपखंड अधिकारी, जो प्रत्यर्थी संख्या 4 है, द्वारा तारीख 15 जनवरी, 2018 से 14 जुलाई, 2018 की अवधि के लिए बद्दोपुर स्थित अबूबकर सिद्दिकी मस्जिद के ऊपर ध्वनि विस्तारक उपकरणों के प्रयोग की अनुज्ञा आदेश में उल्लिखित विनिर्दिष्ट समय पर अजान दिए जाने के लिए कतिपय शर्तों के अध्यधीन रहते हुए प्रदान कर दी गई थी । जिला जौनपुर की तहसील शाहगंज के ग्राम बद्दोपुर की अन्य मस्जिद अर्थात् रहमानी मजिस्द के संबंध में ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग के संबंध में अभिलेख पर कोई अनुज्ञा उपलब्ध नहीं है ।

6. याचिका में यह अभिकथित किया गया है कि एक समय-बिंदु पर उपरोक्त ध्वनि विस्तारक उपकरणों को उक्त मस्जिद से मरम्मत के लिए हटाना पड़ा था । किंतु जब उनको पुन: विस्थापित किया जा रहा था, तब स्थानीय पुलिस ने याची संख्या 1 को उन ध्वनि विस्तारक यंत्रों को पुन: स्थापित करने से रोक दिया । तद्नुसार, याची संख्या 1 ने 2018 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 11840 (**मसरुर अहमद और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**) फाइल की और इस रिट याचिका का निस्तारण तारीख 7 मार्च, 2019 के आदेश द्वारा कर दिया गया, जिसके द्वारा याची को यह अनुमति प्रदान की गई कि वह उक्त मस्जिद में ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग के लिए विधि अनुसार अनुज्ञप्ति के नवीकरण के लिए पुन: आवेदन प्रस्तुत करें ।

7. उपरोक्त निर्देश और इस तथ्य के परिणामस्वरूप याची को उपरोक्त मस्जिद में ध्वनि विस्तारक यंत्रों के प्रयोग के लिए पूर्व में प्रदान की गई अनुज्ञप्ति/अनुज्ञा की अवधि व्यतीत हो चुकी है और प्रत्यर्थी संख्या 4 के समक्ष तारीख 16 मार्च, 2019 को एक प्रत्यावेदन

प्रस्तुत किया गया । प्रत्यर्थी संख्या 4 ने शाहगंज के क्षेत्राधिकारी से रिपोर्ट तलब की, जिसने तारीख 9 मई, 2019 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए अभिकथित किया कि उसने तारीख 7 मार्च 2019 को स्थल का निरीक्षण किया था, जिसमें यह पाया गया कि वह क्षेत्र, जहां दोनों मस्जिदें स्थित हैं, हिंदू और मुस्लिमों की मिलीजुली आबादी है । यदि किसी भी पक्ष को ध्वनि विस्तारक यंत्रों के प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान की गई, तो दोनों धार्मिक समूहों के मध्य तनाव बढ़ेगा, जिससे क्षेत्र में शांतिभंग की आशंका है । उपखंड मजिस्ट्रेट ने भी क्षेत्राधिकारी के साथ क्षेत्र का दौरा किया और पाया कि क्षेत्र में ध्वनि विस्तारक प्रणाली के प्रयोग के कारण हिंदुओं और मुस्लिमों, दोनों धार्मिक समूहों के लोगों वाले ग्राम में अत्यधिक तनाव है । पहले भी इस आधार पर हुए विवाद के कारण गंभीर घटनाएं घटित हो चुकी हैं । इसलिए क्षेत्र में विधि, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए यह उचित होगा कि किसी भी समूह को किसी भी धार्मिक स्थान पर ध्वनि विस्तारक प्रणाली के प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान न की जाए । तद्नुसार, याचियों की अनुज्ञप्ति का नवीकरण नहीं किया जा सकता या उसको विस्तारित नहीं किया जा सकता और कोई भी नई अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

8. संक्षेप में, पूर्वोक्त आदेश को पढ़े जाने से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि याचियों को मजिस्द पर ध्वनि विस्तारक प्रणाली के प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान किए जाने से न केवल ध्वनि प्रदूषण के अंतर्निहित कारणवश बल्कि क्षेत्र में शांति और सौहार्द स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ भी इनकार किया गया था ।

9. यहां पर यह उल्लेख किया जाना संदर्भ के परे नहीं होगा कि भारत के लोग इस बात को महसूस नहीं करते कि ध्वनि अपने आप में ही एक प्रकार का प्रदूषण है । वे स्वास्थ्य पर इसके किसी प्रभाव के बाबत भी पूर्णरूप से जागृत नहीं हैं, यद्यपि अभी हाल के वर्षों में इस संबंध में कुछ जागृति अवश्य आई है ।

10. इसके विपरीत अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंग्लैंड और अन्य देशों में लोग

ध्वनि प्रदूषण के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं और वास्तविकता यह है कि वे अपनी कारों के हॉर्न भी नहीं बजाते और हॉर्न बजाने को अशिष्टता माना जाता है, चूंकि इससे न केवल अन्य लोगों को असुविधा का सामना करना पड़ता है बल्कि पर्यावरण भी प्रदूषित होता है, जिससे स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है ।

11. केंद्रीय सरकार ने 1986 के पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम की धारा 25 सपठित धारा 6(2) और धारा 3(2) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 2000 के ध्वनि प्रदूषण (विनियम और नियंत्रण) नियम (जिनको इसमें इसके पश्चात् 'नियम' कहकर निर्दिष्ट किया गया है) विरचित किए हैं ।

12. उपरोक्त नियम हॉर्न, ध्वनि निष्कासित करने वाले उपकरणों, लाउडस्पीकरों, जनता को संबोधित करने वाली प्रणाली इत्यादि के प्रयोग पर निर्बंधन अधिरोपित करने के अतिरिक्त स्पष्ट रूप से अभिकथित करते हैं कि लाउडस्पीकर या जनता को संबोधित करने वाली प्रणलियों का प्रयोग नहीं किया जाएगा, सिवाए सक्षम प्राधिकारी से लिखित अनुज्ञा अभिप्राप्त किए बिना ।

13. उपरोक्त नियम के नियम 5(1), जो इस मामले के प्रयोजनार्थ सुसंगत है, को नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

> "5. लाउडस्पीकरों/जनता को संबोधित करने वाली प्रणाली और ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपकरणों के प्रयोग पर निर्बंधन -
>
> 1. लाउडस्पीकर या जनता को संबोधित करने वाली प्रणाली का प्रयोग नहीं किया जाएगा, सिवाए सक्षम प्राधिकारी से लिखित अनुज्ञा अभिप्राप्त किए जाने के पश्चात् ।"

14. अनुज्ञा प्रदान करने वाले के लिए सक्षम प्राधिकारी को नियम 2(ग) के अधीन परिभाषित किया गया है, जिसके अर्थान्तर्गत के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस आयुक्त या कोई अन्य अधिकारी, जो पुलिस उप अधीक्षक के रैंक से नीचे का अधिकारी न हो, को सम्मिलित करते हुए

केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा प्राधिकृत कोई प्राधिकारी या अधिकारी सम्मिलित है ।

15. अत: पूर्वोक्त नियम को दृष्टि में रखते हुए, कोई लाउडस्पीकर या जनता को संबोधित करने वाली प्रणाली, संक्षेप में कोई ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपकरण/या ध्वनि विस्तारक यंत्र का प्रयोग संबद्ध प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना किसी सार्वजनिक स्थान पर नहीं किया जा सकता ।

16. हमारे समक्ष उपस्थित मामले में याची संख्या 1 को कतिपय शर्तों के अध्यधीन रहते हुए दिन में विनिर्दिष्ट समयावधि के दौरान तारीख 15 जनवरी, 2018 से 14 जुलाई, 2018 के दौरान की सीमित अवधि के लिए संबद्ध मस्जिद पर ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपकरणों के प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान की गई थी । तत्पश्चात् इस अनुज्ञा का विस्तार या नवीकरण नहीं किया गया । इसके विस्तार/नवीकरण के कारण उत्पन्न होने वाली विधि और व्यवस्था की स्थिति को ध्यान में रखते हुए विस्तार/नवीकरण से इनकार कर दिया गया ।

17. संपूर्ण रिट याचिका में याचियों का यह पक्षकथन नहीं रहा है कि ध्वनि विस्तारक उपकरण स्थापित किए जाने से क्षेत्र में दोनों समूहों के मध्य तनाव होने की संभाव्यता नहीं है और विधि और व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखने के लिए इस प्रकार की अनुज्ञा को प्रदान किए जाने की मांग नहीं की जा सकती ।

18. प्रशासनिक अधिकारी, जिनमें किसी क्षेत्र में विधि और व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखने के उत्तरदायित्व निहित होते हैं, अपनी बाध्यताओं को पूर्ण करने और यह सुनिश्चित करने के कर्तव्य द्वारा बाध्य होते हैं कि उस क्षेत्र के शांति और सौहार्द में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो और यदि उस क्षेत्र में किसी घटना या विवाद के कारण कोई तनाव व्याप्त है, तो उसका निपटारा किया जाना चाहिए । अत: वे इस कर्तव्य के अधीन हैं कि तनाव को घटाएं और इस बात को सुनिश्चित करें कि उस क्षेत्र में शांति बनी रहे ।

19. संविधान के भाग 4-क में निर्दिष्ट मूल कर्तव्य प्रत्येक नागरिक

को, जिनमें प्रशासनिक अधिकारी भी सम्मिलित हैं, लागू होते हैं और साथ ही अन्य बातों के साथ-साथ भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व का निर्माण किए जाने, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित भेदभाव के परे हो और ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो, बाध्य करता है ।

20. संविधान के अनुच्छेद 51-क के सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत किया गया है :-

"**51-क मूल कर्तव्य** - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) .....

(ख) .....

(ग) .....

(घ) .....

(ड.) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व का निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित भेदभाव के परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो ।"

21. उपरोक्त उपबंध को दृष्टि में रखते हुए देश के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वे भारत के लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करे और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि कोई भी कार्यवाही जो भाईचारे में व्यवधान उत्पन्न करती हो, को रोका जाए और उस पर प्रतिबंध लगाया जाए ।

22. याचियों ने निवेदन किया कि मस्जिदों पर जिनमें एक दिन में पांच बार दो मिनट की अवधि तक ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के प्रयोग से न तो ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होगा और न ही क्षेत्र के भाईचारा में व्यवधान उत्पन्न होगा । यह उनकी धार्मिक प्रथा का आवश्यक भाग है और बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ यह आवश्यक हो गया है कि लोगों को ध्वनि विस्तारक यंत्रों और लाउडस्पीकरों के माध्यम से सूचित किया जाए कि वे मस्जिदों में आएं और नवाज अदा करें ।

23. यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अंत:करण की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार है, जैसाकि संविधान के अनुच्छेद 25(1) के अधीन प्रत्याभूत है, किंतु उक्त अधिकार कोई अनिर्बंधित अधिकार नहीं । अनुच्छेद 25 के अधीन प्रदत्त यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अध्यधीन है और इस प्रकार इन दोनों ही अनुच्छेदों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और दोनों का अर्थान्वयन एक दूसरे के सामंजस्य में किया जाना चाहिए ।

24. **आचार्य महेश्वरी नरेन्द्र प्रसाद जी आनंद प्रसाद जी महाराज** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में न्यायालय ने पैराग्राफ 3 में जो मताभिव्यक्ति की, वह निम्नलिखित है :-

> "किसी भी संगठित समाज में कोई अधिकार अनिर्बंधित नहीं होता । किसी भी व्यक्ति को प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग अन्य लोगों को प्रदत्त अधिकार के प्रयोग के सामंजस्य में होना चाहिए । जहां किसी समाज में यह संभव न हो कि स्वैच्छिक रूप से सामंजस्य स्थापित किया जा सके, तो वहां पर राज्य के परस्पर विरोधी हितों के मध्य व्याप्त असंतुलन को संतुलित किए जाने के लिए कार्रवाई करनी चाहिए .....।"

25. न्यायालय ने **आचार्य महेश्वरी** (उपरोक्त) वाले निर्णय के पैराग्राफ 31 में आगे मताभिव्यक्ति की, जो निम्नलिखित है :-

> "कोई भी विशिष्ट मूल अधिकार किसी बंद कमरे में एकांत में विद्यमान नहीं हो सकता । किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों को अन्य व्यक्तियों द्वारा उपभोग किए जा रहे अन्य मूल अधिकारों के सामंजस्य में विद्यमान होना चाहिए और साथ ही राज्य द्वारा संपूर्ण सामाज के कल्याण के हितों में विरचित नीति निर्देशक सिद्धांतों के प्रकाश में शक्ति के युक्तिसंगत और विधिमान्य प्रयोग में होने चाहिए ।"

---

[1] (1975) 1 एस. सी. सी. 11.

26. **चर्च ऑफ गॉड (फुल गास्पेल) इन इंडिया** बनाम **के. के. आर. मैजेस्टिक कालोनी वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन प्रदत्त अधिकार लोक व्यवस्था, सदाचार और लोक स्वास्थ्य के अध्यधीन होते हैं । किसी भी धर्म में यह विहित नहीं किया गया है या यह शिक्षा नहीं दी गई है कि प्रार्थना ध्वनि विस्तारक यंत्रों या ढोल पीटे जाने के द्वारा संपन्न कराई जानी अपेक्षित है, जो उन लोगों को सम्मिलित करते हुए, जिनको कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं कर रहा है, अन्य लोगों के अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हो ।

27. मानीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **डा. सुब्रहमण्यम स्वामी** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] वाले मामले में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए गए हैं और धार्मिक मामलों का प्रबंधन किए जाने के अधिकार को संविधान के अध्याय 3 के अन्य उपबंधों के अधीन होना अभिनिर्धारित किया गया है ।

28. इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **संत कुमार और अन्य** बनाम **कलक्टर, सहारनपुर और अन्य**[3] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने धर्म का स्वतंत्रतापूर्वक पालन किया जाना संविधान के अनुच्छेद 25 के अधीन मूल अधिकार है, किंतु धर्म का उक्त अधिकार और निजता के अधिकार, जो भी मूल अधिकार है, को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने धर्म का पालन इस प्रकार से करें जिससे अन्य लोगों की निजता का उल्लंघन होता हो । इस प्रकार न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए जनसाधारण से अपील की कि वे विभिन्न धार्मिक क्रियाकलापों, जैसेकि अखंड रामायण, कीर्तन इत्यादि के लिए लाउडस्पीकरों के प्रयोग से विरत रहें, चूंकि इससे जनता को असुविधा होती है और ध्वनि प्रदूषण भी सृजित होता है ।

---

[1] (2000) 1 एस. सी. सी. 282.

[2] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 460.

[3] 1999 (2) ए. डब्ल्यू. सी. 1664.

29. यहां पर ध्वनि प्रदूषण के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **ध्वनि प्रदूषण**[1] वाले मामले के संदर्भ का उत्तर देते हुए दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जाना अप्रासंगिक नहीं होगा, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वाक् और अभिव्यक्ति के स्वतंत्र्य के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 19(1) के अधीन किसी व्यक्ति के अधिकार अनिर्बंधित अधिकार नहीं हैं और कोई भी व्यक्ति लाउडस्पीकरों की सहायता से अपने वाक् की ध्वनि को विस्तारित किए जाने के द्वारा ध्वनि सृजित करके इस मूल अधिकार का दावा नहीं कर सकता, चूंकि प्रत्येक नागरिक को यह मूल अधिकार है कि वह शांति, सुविधा और निजता के साथ अपने घर में रहे ।

30. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **फरद के. वाडिया** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि 'शांति की आवश्यकता', 'निद्रा की आवश्यकता', 'निद्रा और विश्राम के दौरान प्रक्रिया' जैविक आवश्यकताएं हैं और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं और मानवाधिकार के भाग हैं, चूंकि ध्वनि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है ।

31. आज इस बात को वैश्विक रूप से स्वीकार किया जाता है कि ध्वनि मानव स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है । इसके कारणवश सुनने की क्षमता की हानि होती है, जिसके परिणामस्वरूप बहरापन, उच्च रक्तचाप, अवसाद, थकान और यहां तक कि चिड़चिड़ापन भी होता है । आवश्यकता से अधिक ध्वनि के परिणास्वरूप हृदय संबंधी रोग, मानसिक रोग और घबराहट जैसे रोग बढ़ रहे हैं ।

32. यह साम्यापूर्ण अधिकारिता के प्रयोग का प्रमुख सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय को इसका प्रयोग करते हुए सामाजिक संतुलन को बनाए रखना चाहिए और ऐसे मामलों में मध्यक्षेप करना चाहिए, जहां आवश्यक हो और ऐसे मामलों में मध्यक्षेप करने से इनकार कर देना चाहिए जहां इसका प्रयोग सामाजिक हित और लोक व्यवस्था के विरुद्ध हो ।

---

[1] (2005) 8 एस. सी. सी. 796.

[2] (2009) 2 एस. सी. सी. 442.

33. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **प्रभू**[1] वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि न्यायालय को सामाजिक हित में साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस अधिकारिता का प्रयोग करने की परिणामों और दुष्परिणामों पर विचार करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि क्या मध्यक्षेप करने से सामाज का सामंजस्य स्थापित होगा या मध्यक्षेप करने से इनकार करने से ।

34. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रितेश तिवारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग आपसी सद्भाव और साम्या को प्रोन्नत किए जाने और व्यापक लोक हित में किया जाना चाहिए ।

35. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए हमारा यह स्पष्ट मत है कि इस मामले में हमारे द्वारा असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं हैं, चूंकि हमारे द्वारा मध्यक्षेप करने के परिणामस्वरूप सामाजिक असंतुलन सृजित हो सकता है ।

36. तद्नुसार यह रिट याचिका लागत के संबंध में कोई आदेश पारित किए बिना खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

---

[1] (1994) 2 एस. सी. सी. 481.

[2] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3823.

(2020) 2 सि. नि. प. 182 इलाहाबाद

सुजाता गांधी

बनाम

एस. बी. गांधी

(2019 की द्वितीय अपील संख्या 1079)

तारीख 12 जून, 2020

न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) – धारा 2(ध) और 17 [सपठित हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-क) और 13(1)(ii) और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1, नियम 3, 9, 10 और 10(2)] – साझी गृहस्थी – यह कहना गलत है कि अपीलार्थी-पुत्रवधू ने जिस वैवाहिक घर में विवाह के पश्चात् प्रवेश किया, वह मकान साझी गृहस्थी का भाग है और उसको पुत्र के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना वैवाहिक घर से निष्कासित नहीं किया जा सकता – साझी गृहस्थी की परिभाषा, को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी-पुत्रवधू को पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् वैवाहिक घर के प्रथम तल पर निवास कर रही थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित किया जा सकता है ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 1, नियम 3 – प्रतिवादियों के रूप में कौन संयोजित किए जा सकेंगे – इस अनुतोष की ईप्सा किया जाना निरर्थक और विधि विरुद्ध होगा कि पुत्र, जो वैवाहिक घर में निवास नहीं करता, को उसकी पत्नी के विरुद्ध फाइल किए गए निष्कासन वाद में अनिवार्यत: पक्ष बनाया जाना चाहिए ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 1, नियम 9 – पक्षों का कुसंयोजन और असंयोजन – किसी वाद को किसी पक्ष के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ, यह साबित किया जाना चाहिए कि पक्ष, जिसे वाद में पक्ष नहीं बनाया गया है, वाद का

आवश्यक पक्ष है, जिसकी उपस्थिति के बिना वाद में निर्णय नहीं किया जा सकता ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 1, नियम 10(2) – न्यायालय पक्षकारों के नाम काट सकेगा या जोड़ सकेगा – यह वादी के विवेक पर निर्भर होता है कि वह वाद में किसी व्यक्ति को पक्ष के रूप में संयोजित करे या प्रतिवादियों के रूप में सम्मिलित करे – यह केवल नियम 10(2) के उपबंध के अधीन है कि न्यायालय द्वारा इस विशेषाधिकार का प्रयोग या तो पक्षों द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर किया जाए या न्यायालय द्वारा वाद का आवश्यक या उचित पक्ष प्रतीत किए जाने पर स्वप्रेरणा से – किसी पक्ष को आवश्यक पक्ष अभिनिर्धारित किए जाने की अपेक्षाएं कठोर प्रकृति की होती हैं और कोई आवश्यक पक्ष वह व्यक्ति होता है जिसको न्यायालय द्वारा पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाना होता है और जिसकी अनुपस्थिति में प्रभावी डिक्री पारित नहीं की जा सकती ।

इस मामले के विवरणों के अनुसार जो आवश्यक तथ्य उभरकर सामने आए हैं, यह हैं कि अपीलार्थी (पुत्रवधू) का विवाह वादी के पुत्र विजय गांधी के साथ तारीख 29 अप्रैल, 1998 को संपन्न हुआ था और इस विवाह बंधन से दो बच्चे उत्पन्न हुए । वर्ष 2013 में वादी के पुत्र विजय गांधी ने अपीलार्थी को छोड़ दिया और तत्पश्चात् हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की । वादी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध गाजियाबाद के लिंक रोड पुलिस थाना में असंज्ञेय अपराध की एक रिपोर्ट/प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भी दर्ज कराई गई । अपीलार्थी के ससुर, जो निचले न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी के निष्कासन के लिए फाइल किए गए वाद के वादी हैं, के अनुसार वे गाजियाबाद के सूर्य नगर स्थित मकान संख्या ए-242 के स्वामी हैं, उन्होंने अपने पुत्र के विवाह के पश्चात् उसको और अपीलार्थी को अपने स्वामित्व वाले स्व-अर्जित मकान के प्रथम तल में रहने की अनुज्ञा प्रदान कर दी थी । उन्होंने वादपत्र में यह भी अभिकथित किया कि वह और उसकी पत्नी वृद्ध हैं और दिव्यांग भी हैं विवाह के पश्चात् अपीलार्थी ने

उनके और उनकी पत्नी को परेशान करना आरंभ कर दिया, जिस कारणवश वादी ने अपने पुत्र और अपीलार्थी को अपना मकान खाली करने के लिए कहा । उनके पुत्र विजय गांधी ने वादग्रस्त संपत्ति को छोड़ दिया और अपीलार्थी के साथ किसी अन्यत्र स्थान पर निवास करने लगा । तथापि, कुछ समय पश्चात् अपीलार्थी अपने ससुर के स्वामित्व वाले मकान में वापस लौट आई और उसने वादग्रस्त संपत्ति पर जबरन कब्जा कर लिया । उसने मकान को खाली करने से भी इनकार कर दिया । अतः, वादी ने अपीलार्थी (पुत्रवधू) के निष्कासन के लिए गाजियाबाद के सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ वर्ग) के न्यायालय में वाद फाइल किया । अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष यह पक्षकथन किया कि वह अपने ससुर के मकान, जो उसका वैवाहिक घर है, में ही निवास करती रही है और उसने अपने वैवाहिक मकान को कभी नहीं छोड़ा । अपीलार्थी का यह पक्षकथन भी है कि वह विवाह के उपरांत अपने सास-ससुर के स्वामित्व वाले जिस मकान में पुत्रवधू के रूप में आई थी, उस मकान को 2005 के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन साझी गृहस्थी की परिभाषा के अंतर्गत साझी गृहस्थी माना जाना चाहिए, क्योंकि साझी गृहस्थी से ऐसी गृहस्थी अभिप्रेत है, जहां व्यथित महिला रहती है या किसी घरेलू नातेदारी में अकेले या अपने पति के साथ किसी प्रक्रम पर रह चुकी है और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी सम्मिलित है, जो या तो उस व्यथित महिला और उसके पति के संयुक्त स्वामित्व या किराएदारी में है या उनमें से किसी के स्वामित्व या किराएदारी में है, जिसके संबंध में या तो व्यथित महिला या उसका पति या दोनों संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हक, हित या साम्या रखते हैं । गाजियाबाद के अपर जिला न्यायाधीश ने 2017 की सिविल अपील संख्या 63 में तारीख 19 सितंबर, 2019 के निर्णय और तारीख 23 सितंबर, 2019 को डिक्री पारित करते हुए अपीलार्थी (पुत्रवधू) की उपरोक्त दलील को नामंजूर कर दिया और गाजियाबाद के सिविल न्यायाधीश द्वारा 2014 के मूल वाद संख्या 907 में तारीख 8 मार्च, 2017 के निर्णय और तारीख 22 मार्च, 2017 की डिक्री की पुष्टि कर दी । गाजियाबाद के अपर जिला न्यायाधीश

द्वारा पारित उपरोक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मैं उपरोक्त चर्चा को दृष्टि में रखते हुए यह मताभिव्यक्ति करता हूं कि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि 2005 के अधिनियम के आधार पर दी गई दलीलें उस समय उपलब्ध नहीं थीं जब एस. आर. बत्तरा वाले मामले में निर्णय पारित किया गया था, पूर्णरूपेण भ्रमपूर्ण है । वास्तव में, मैं इस दलील को भ्रमित करने वाली, अभिलेखों के विरुद्ध और माननीय उच्चतम न्यायालय की गरिमा के विरुद्ध पाता हूं, विशेष रूप से तब जब माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निर्णय का अवलंब बिमलाबेन अजीतभाई पटेल वाले मामले में अनुमोदन के साथ लिया गया । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने वैशाली अभिमन्यु जोशी बनाम नाना साहेब गोपाल जोशी वाले मामले में दिए गए निर्णय को अनिच्छापूर्वक यह दलील देते हुए निर्दिष्ट किया कि निवास के लिए पुत्रवधू द्वारा फाइल किए गए खंडन दावे पर उसके विरुद्ध संस्थित निष्कासन के दावे में विचार किया जा सकता है । मैंने इस निर्णय का परिशीलन किया । मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि यह निर्णय भिन्न विवाद्यक पर आधारित है और वर्तमान मामले में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न से संबंधित नहीं है । उस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था, यह था कि क्या प्रत्यर्थी (पुत्रवधू के ससुर) द्वारा 1887 के प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम के अधीन फाइल किए गए वाद में अपीलार्थी द्वारा 2005 के अधिनियम की धारा 19 के अनुसार निवास के अधिकार की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया खंडन दावा विचार किए जाने योग्य है या नहीं और क्या 1887 के अधिनियम के उपबंध ऐसे किसी खंडन दावे पर विचार किए जाने को वर्जित करते हैं ? उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी-अपीलार्थी (पुत्रवधू) द्वारा फाइल किया गया खंडन दावा लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा विचार किए जाने योग्य था । इसलिए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वह वाद भिन्न विवाद्यक पर आधारित था और वर्तमान मामले में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न से संबंधित नहीं है । मैं वर्तमान मामले

के तथ्यों पर वापस लौटते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वादपत्र में किए गए इस विनिर्दिष्ट प्रकथन कि वादी वादग्रस्त संपत्ति का अनन्य स्वामी है, को दृष्टि में रखते हुए लिखित कथन के पैरा की अंतर्वस्तु से स्पष्टत: उपदर्शित होता है कि यह प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा उसके लिखित कथन के आधार पर स्वीकृत मामला है कि वादग्रस्त संपत्ति वादी की अनन्य संपत्ति है । इस पर भी विवाद नहीं है कि वादी एक वृद्ध व्यक्ति है और उसकी पत्नी, जो प्रतिवादी की सास है, एक दिव्यांग है जिसका एक पैर कटा हुआ है । यह भी विवादित नहीं है कि पुत्र (पति) और प्रतिवादी के मध्य विवाह-विच्छेद याचिका लंबित है और वादी का प्रकथन/अभिवचन कि उसके पुत्र ने मकान को छोड़ दिया है और कहीं अन्यत्र निवास कर रहा है, का प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा खंडन नहीं कराया जा सका और दोनों ही निचले न्यायालयों द्वारा इस बाबत तथ्य का समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है, जो तर्क विरुद्ध प्रकृति के प्रतीत नहीं होते, जिससे कि इस न्यायालय द्वारा उनमें किसी प्रकार का मध्यक्षेप किया जा सके । विचारण न्यायालय के समक्ष इस बाबत कोई आक्षेप कभी नहीं किया गया कि पति आवश्यक पक्ष है । यह आधार निचले अपील न्यायालय के समक्ष भी नहीं लिया गया था । अत:, यह आधार इस प्रक्रम पर इस न्यायालय के समक्ष भी नहीं उठाया जा सकता । जैसे कि पहले ही मताभिव्यक्ति की जा चुकी है, अभिवचनों और निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के आधार पर विधि का एक सारभूत प्रश्न उद्भूत होता है । अत:, इस आधार पर वर्तमान अपील में विधि का ऐसा कोई सारभूत प्रश्न इस प्रक्रम पर नहीं उठाया जा सकता । अन्यथा रूप से भी, इस मामले में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर यह है कि साझी गृहस्थी की परिभाषा पर विचार करते हुए भी, जैसाकि 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन उपबंधित है, अपीलार्थी/पुत्रवधू को पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति के प्रथम तल पर निवास कर रही थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना भी निष्कासित किया जा सकता है । इस मामले का एक अन्य पहलू भी है, जो यह है कि न्यायालय द्वारा कोई निरर्थक अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता । इस बाबत विवाद नहीं है

कि वादी के प्रकथन/अभिवचन कि उनके पुत्र ने मकान को छोड़ दिया है और अन्यत्र निवास कर रहा है, का प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा खंडन नहीं किया गया और इस बाबत दोनों निचले न्यायालयों द्वारा तथ्यों के आधार पर समवर्ती निष्कर्ष दिए गए हैं, जो तर्क विरुद्ध प्रकृति के प्रतीत नहीं होते, जिनके आधार पर इस न्यायालय द्वारा कोई मध्यक्षेप अपेक्षित हो । अत: यह कहना कि अपीलार्थी-पुत्रवधू को पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति के प्रथम तल पर निवास कर रही थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित नहीं किया जा सकता, पुत्र, जो प्रश्नगत मकान में निवास नहीं कर रहा है, के विरुद्ध चाहा गया अनुतोष निरर्थक होगा, इसलिए न्यायालय द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता । वास्तव में सामान्य भाषा में यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक चिकित्सक पुत्र को उसके और उसकी पत्नी के मध्य तनावपूर्ण संबंधों के कारण अपने वृद्ध माता-पिता का साथ छोड़ते हुए मकान को छोड़ना पड़ा, विशेष रूप से उसकी माता को, जो शारीरिक रूप से विपदाग्रस्त स्थिति में है और यद्यपि चिकित्सक पुत्र समय-समय पर उसकी देखभाल के लिए जाता है, फिर भी उसके क्रियाकलाप को नकारात्मक क्रियाकलाप के रूप में दर्शित किया जा रहा है । प्रतिवादी-अपीलार्थी का यह पक्षकथन बिल्कुल भी नहीं है कि वह उनकी देखभाल कर रही है । वास्तव में वादपत्र में उल्लिखित पक्षकथन इसके सर्वथा विपरीत है । इसलिए, इन परिस्थितियों में यह अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण है कि माता-पिता अपने पुत्र के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा करने के लिए विवश हैं, जबकि वास्तविक अनुतोष पुत्रवधू के विरुद्ध ईप्सित है, जिसने अपने सास-ससुर का जीवन दयनीय बना दिया है । अत:, पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए वर्तमान मामले में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है, यह है कि साझी गृहस्थी की परिभाषा, जैसीकि 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन उपबंधित है, को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी-पुत्रवधू का पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति के प्रथम तल पर निवास कर रही थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित किया जा सकता है । (पैरा 32, 36, 37, 38, 39, 40 और 41)

इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3 और नियम 9 के उपबंधों का उल्लेख किया जाना सुसंगत होगा, जिनको पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया है । यह विवादित नहीं है कि पति वादग्रस्त संपत्ति में निवास नहीं कर रहा है और उसने उस मकान को छोड़ दिया है । इस बात पर भी विवाद नहीं है कि यदि माता-पिता अपने पुत्र को उनके मकान में निवास करने की अनुज्ञा प्रदान करते हैं, तो वह अनुज्ञप्तिधारी हो जाएगा । यदि उसकी पत्नी भी उसके साथ निवास कर रही है, तो वह भी अनुज्ञप्तिधारी होगी । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3 स्पष्टत: उपबंधित करता है, 'प्रतिवादियों के रूप में कौन संयोजित किए जा सकेंगे ।' यहां पर यह बताना अनावश्यक है कि वर्तमान मामले में या यह कहा जाए कि किसी ऐसे मामले में जहां पुत्र ने अपने माता-पिता का मकान छोड़ दिया और वह वादग्रस्त संपत्ति में निवास नहीं कर रहा है, तो उसके विरुद्ध किसी अनुतोष का दावा न तो किया जाता है न ही किया जाएगा । चूंकि वह वादग्रस्त संपत्ति में निवास नहीं कर रहा है, इसलिए पृथक् वाद फाइल किए जाने का प्रश्न या वह प्रश्न जो विधि या तथ्य के सामान्य प्रश्न को आकर्षित कर सकता है, उद्भूत नहीं होगा । इसलिए उसको वादी और प्रतिवादी के मध्य मुकदमे में आवश्यक पक्ष नहीं कहा जा सकता । (पैरा 18)

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 9 पक्षों के कुसंयोजन और असंयोजन का उपबंध है, जो स्पष्टत: उपबंधित करता है कि कोई भी वाद पक्षकारों के कुसंयोजन या असंयोजन के कारण विफल नहीं होगा और न्यायालय हर वाद में विवादग्रस्त विषय का निपटारा वहां तक कर सकेगा, जहां तक उन पक्षकारों के, जो वस्तुत: उसके समक्ष हैं, अधिकारों और हितों का संबंध है । तथापि, 1976 के अधिनियम संख्या 104 की धारा 52 द्वारा इस धारा में तारीख 1 फरवरी, 1977 से एक परंतुक जोड़ा गया जो यह है कि 'परंतु इस नियम की कोई बात किसी आवश्यक पक्षकार के असंयोजन को लागू नहीं होगी' । अत:, इस प्रयोजनार्थ कि किसी वाद को किसी पक्ष के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण अभिनिर्धारित किया जाए, यह साबित किया जाना चाहिए कि पक्ष, जिसे वाद में पक्ष

नहीं बनाया गया है, वाद का आवश्यक पक्ष है, जिसकी उपस्थिति के बिना वाद में निर्णय नहीं किया जा सकता । (पैरा 19)

'प्रभुत्व' (Dominus Litis) का सिद्धांत पक्षों के संयोजन के संबंध में एक अत्यधिक विख्यात सिद्धांत है, जो स्पष्टत: उपबंधित करता है कि यदि किसी वाद में वादी का प्रभुत्व है, तो वह उस व्यक्ति का चुनाव कर लेगा जिससे वह मुकदमेबाजी चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा फाइल करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह किसी अनुतोष की ईप्सा नहीं करता । परिणामस्वरूप, कोई व्यक्ति, जो पक्ष नहीं है, को यह अधिकार नहीं है कि वह वादी की इच्छा के विरुद्ध वाद में पक्ष बने । तथापि, यह सामान्य सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) के उपबंधों के अध्यधीन है, जो उचित और आवश्यक पक्षों को पक्ष बनाए जाने के लिए उपबंधित करते हैं । यहां तक कि पूर्वोक्त उपबंधों में भी न्यायालय के लिए वैवेकिक अधिकार छोड़ा गया है, जिसका प्रयोग करते हुए न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किसी पक्ष को किसी भी पक्ष द्वारा आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर या बिना आवेदन के किन्हीं शर्तों पर पक्ष बना सके और किसी भी व्यक्ति, जिसको अनुचित रूप से मुकदमे में पक्ष बना दिया गया है या मुकदमे में सम्मिलित कर लिया गया है, का नाम हटाए जाने के लिए निर्देशित कर सके और किसी भी ऐसे व्यक्ति का नाम पक्षों की सूची में बढ़ाए जाने के लिए निर्देशित कर सके जिसको वादी या प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित किया जाना था या जिसकी उपस्थिति न्यायालय को मामले का प्रभावी ढंग से और पूर्णरूपेण न्यायनिर्णयन करने में समर्थ बनाने के लिए और वाद में अंतर्वलित समस्त प्रश्नों को संबोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक थी । इस पर अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 9 पक्षों के संयोजन और कुसंयोजन के लिए उपबंधित करता है । वर्ष 1977 से, जब 1976 के (संशोधन) अधिनियम संख्या 104 की धारा 52 द्वारा तारीख 1 फरवरी, 1977 से परंतुक को जोड़ा गया, नियम 9 के अधीन यह उपबंधित कर दिया गया कि कोई भी वाद पक्षकारों के कुसंयोजन या असंयोजन के कारण विफल नहीं होगा ।

इस बात को पूर्वोक्त संशोधन द्वारा जोड़े गए परंतुक द्वारा इस प्रभाव तक स्पष्ट किया गया कि 'परंतु इस नियम की कोई बात किसी आवश्यक पक्षकार के असंयोजन को लागू नहीं होगी' । अत: यह स्पष्ट है कि किसी मूल वाद में, जब तक कि कानूनी रूप से उपबंधित न कर दिया जाए, यह वादी के विवेक पर निर्भर होता है कि वह किसी व्यक्ति को पक्ष के रूप में संयोजित करे या जिसे वह मामले में प्रतिवादियों के रूप में सम्मिलित करे । यह केवल नियम 10(2) के उपबंध के अधीन है कि न्यायालय द्वारा इस विशेषाधिकार का प्रयोग या तो पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन पर किया जाता है या यदि न्यायालय को उचित प्रतीत होता है कि कोई पक्ष वाद का आवश्यक या उचित पक्ष है, तो स्वप्रेरणा से । किसी पक्ष को आवश्यक पक्ष अभिनिर्धारित किए जाने की अपेक्षाएं कठोर प्रकृति की होती हैं और जैसाकि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ऊपर उद्धृत निर्णय में पहले ही अभिनिर्धारित किया गया है, कोई आवश्यक पक्ष वह व्यक्ति होता है जिसको न्यायालय द्वारा पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाना होता है और जिसकी अनुपस्थिति में प्रभावी डिक्री पारित नहीं की जा सकती । अत:, निष्कासन या व्यादेश के किसी वाद में यह वादी का वैवेकिक अधिकार होता है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति का चुनाव करे, जिसके विरुद्ध वह मुकदमा चलाना चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध वाद फाइल करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह किसी अनुतोष की ईप्सा नहीं करता । कुछ अधिनियमितियों में यह उपबंधित किया गया है कि कुछ वादों में कतिपय पक्ष आवश्यक पक्ष होते हैं । यहां तक कि यदि सामान्य रूप से बात की जाए, तो कुछ मामलों में कानूनी रूप से यह उपबंधित किया जाता है और आवश्यक पक्ष प्राय: या तो राज्य होते हैं या कोई अन्य कानूनी प्राधिकारी और न कि कोई निजी व्यक्ति । उदाहरणार्थ 1950 के उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम (2006 के उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 116) की धारा 176(i) उपबंधित करती है कि कोई भूमिधर अपनी धृति के विभाजन के लिए वाद फाइल कर सकता है । इस धारा की उपधारा (2) उपबंधित करती है कि ऐसे प्रत्येक वाद में

संबद्ध ग्राम सभा को पक्ष बनाया जाएगा । जैसीकि पहले चर्चा की गई है, निजी पक्षों के मध्य वाद में वादी का प्रभुत्व होता है, तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) के अधीन यह न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया गया है कि न्यायालय पक्षों को वाद प्रथक कर सकेगा या संयोजित कर सकेगा । इस वैवेकिक अधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से किया जाना चाहिए, न कि मात्र सनक के आधार पर या किसी पक्ष द्वारा की गई मांग के आधार पर । न्यायालय द्वारा इस बाबत अपना समाधान अभिलिखित किया जाना चाहिए कि वाद में किसी पक्ष को अंतर्वलित समस्त प्रश्नों के प्रभावी और संपूर्ण न्यायनिर्णयन के लिए संयोजित किया जाना है । अतः, निष्कासन या व्यादेश के किसी वाद में वादी का यह विवेकाधिकार है कि वह उस व्यक्ति का चुनाव करे, जिसके विरुद्ध मुकदमा चलाना चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह कोई अनुतोष नहीं चाहता । (पैरा 20 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2020] 2020 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 667 :
रिचा गौड़ बनाम **कमलकिशोर गौड़** ; 35

[2020] 2020 (1) ए. आर. सी. 381 :
गुरमीत सिंह भाटिया बनाम **किरणकांत रॉबिन्सन और अन्य** ; 23

[2019] ए. आई. आर. 2019 एस. सी. 3577 :
गुरमीत सिंह भाटिया बनाम **किरणकांत रॉबिन्सन और अन्य** ; 22

[2019] (2019) 6 एस. सी. सी. 647 :
गिरीश कुमार बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 26

[2019] (2019) 8 एस. सी. सी. 112 :
पाम डेवलप्मेंट (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ; 26

[2017] (2017) 14 एस. सी. सी. 373 :
वैशाली अभिमन्यु जोशी बनाम **नाना साहेब गोपाल जोशी** ; 36

[2016] (2016) 94 ए. सी. सी. 408 :
नीतू राणा बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 6

[2016] (2016) 4 आर. सी. आर. (सिविल) 21 :
सुभाष और अन्य बनाम **शिवानी** ; 6

[2014] (2014) 5 एस. सी. सी. 312 :
अड़िकला नारासा रेड्डी बनाम **वेंकटराम रेड्डी गिरी** ; 12

[2014] ए. आई. आर. 2014 दिल्ली 46 :
प्रिती सतीजा बनाम **राजकुमारी** ; 4

[2012] (2012) 78 ए. सी. सी. 328 :
निशांत शर्मा बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 6

[2010] आई. एल. आर. 2010 (6) दिल्ली 625 :
हरबंश लाल मलिक बनाम **पायल मलिक** ; 6

[2010] (2010) 7 एस. सी. सी. 417 :
मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम **रीजेंसी कन्वेंसन सेंटर और होटल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** ; 21

[2009] (2009) 162 डी. एल. टी. 459 :
कविता गंभीर बनाम **हरि चंद गंभीर और एक अन्य** ; 6

[2009] (2009) 1 के. एल. जे. 278 :
प्रभाकरण एस. बनाम **केरल राज्य** ; 6

[2008] (2008) 4 एस. सी. सी. 649 :
बिमलाबेन अजीतभाई पटेल बनाम **वत्सलाबेन अशोकभाई पटेल और अन्य** ; 30

[2007] 2007 (96) डी. आर. जे. 697 :
शुमिता दीदी संधू बनाम **संजय सिंह संधू और अन्य** ; 8

[2007] (2007) 3 एस. सी. सी. 169 :
एस. आर. बत्तरा बनाम **तरुणा बत्तरा** ; 6, 8, 9

[2006] (2006) 6 एस. सी. सी. 733 :
कस्तुरी बनाम **उय्यमपेरुमल** ; 23

[2005] (2005) 3 एस. सी. सी. 313 :
बी. पी. अचाला आनंद बनाम **एस. अप्पी रेड्डी और एक अन्य** ; 6, 27

[1962] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1314 :
श्री चूनी लाल बनाम **मेहता सन्स लिमिटेड और सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड** । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की द्वितीय अपील संख्या 1079.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

याची की ओर से सर्वश्री टी. इस्लाम और जतीन सहगल

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अनील कुमार श्रीवास्तव और जे. बी. सिंह

आदेश

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री जतीन सहगल और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री जे. बी. सिंह को सुना ।

2. वर्तमान अपील 2017 की सिविल अपील संख्या 63 (**सुजाता गांधी** बनाम **एस. बी. गांधी**) में गाजियाबाद के अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 13 द्वारा तारीख 19 सितंबर, 2019 और 23 सितंबर, 2019 को पारित निर्णय और डिक्री और 2014 के मूल वाद संख्या 907 (**एस. बी. गांधी** बनाम **श्रीमती सुजाता गांधी**) में गाजियाबाद के सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ वर्ग) द्वारा तारीख 8 मार्च, 2017 और 22 मार्च, 2017 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की गई है ।

3. इस मामले के विवरणों में जो आवश्यक तथ्य उभरकर सामने आए हैं, ये हैं कि अपीलार्थी का विवाह वादी के पुत्र विजय गांधी के साथ तारीख 29 अप्रैल, 1998 को संपन्न हुआ था और इस विवाह बंधन से दो बच्चे उत्पन्न हुए । वर्ष 2013 में वादी के पुत्र विजय गांधी ने अपीलार्थी को छोड़ दिया और तत्पश्चात् हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की । वादी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध गाजियाबाद के लिंक रोड पुलिस थाना में असंज्ञेय अपराध की एक रिपोर्ट/प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । वादपत्र के अनुसार वादी ने गाजियाबाद के सूर्य नगर स्थित मकान संख्या ए-242 के स्वामी है । उन्होंने अपने पुत्र के विवाह के पश्चात् उसको और प्रतिवादी को अपने मकान के प्रथम तल में रहने की अनुज्ञा प्रदान कर दी । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि वह और उसकी पत्नी वृद्ध है और दिव्यांग भी हैं । प्रतिवादी ने वादी और उसकी पत्नी को परेशान करना आरंभ कर दिया । वादी ने इन परिस्थितियों में अपने पुत्र और प्रतिवादी को अपना मकान खाली करने के लिए कहा । उनके पुत्र विजय गांधी ने वादग्रस्त संपत्ति को छोड़ दिया और प्रतिवादी के साथ किसी अन्य स्थान पर रहने लगा, तथापि, कुछ समय पश्चात् प्रतिवादी वापस लौट आई और उसने वादग्रस्त संपत्ति पर जबरन कब्जा कर लिया और तत्पश्चात् उसने मकान को खाली करने से मना कर दिया । अतः, प्रतिवादी के निष्कासन के लिए वाद फाइल किया गया । प्रतिवादी का पक्षकथन यह है कि उसने अपने वैवाहिक मकान को कभी नहीं छोड़ा और वह निरंतर रूप से उसी मकान में रह रही है ।

4. मैंने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

5. मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों का उल्लेख तारीख 19 नवंबर, 2019 को, जब अपील को इस न्यायालय द्वारा विचारार्थ ग्रहण किया गया था और विधि के सारभूत प्रश्नों को विरचित किया गया था, पारित आदेश में समुचित ढंग से किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "अपीलार्थी के काउंसेल श्री जतीन सहगल और प्रत्यर्थियों के काउंसेल श्री एस. बी. सिंह को सुना ।

यह द्वितीय अपील 2017 की सिविल अपील संख्या 63 (सुजाता गांधी **बनाम** एस. बी. गांधी) में गाजियाबाद के अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 13 द्वारा तारीख 19 सितंबर, 2019 और 23 सितंबर, 2019 को पारित निर्णय और डिक्री, जिसके द्वारा 2014 के मूल वाद संख्या 907 (एस. बी. गांधी **बनाम** सुजाता गांधी) में गाजियाबाद के सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ वर्ग) द्वारा तारीख 8 मार्च, 2017 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपीलार्थी-प्रतिवादी को वादग्रस्त संपत्ति, गाजियाबाद के सूर्य नगर स्थित मकान संख्या ए-242 से निष्कासन के लिए कहा गया, व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल की गई है । अपीलार्थी के काउंसेल ने निवेदन किया कि यह स्वीकृत स्थिति है कि वर्तमान अपीलार्थी के ससुर अर्थात् श्री एस. बी. गांधी ने अपने पुत्र विजय गांधी को पक्ष बनाए बिना वाद फाइल किया था । उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी का विवाह वादी के पुत्र विजय गांधी के साथ तारीख 29 अप्रैल, 1998 को संपन्न हुआ था और इस विवाह बंधन से तारीख 23 अप्रैल, 2004 और 8 मार्च, 2007 को दो बच्चों का जन्म हुआ । वर्ष 2013 में विजय गांधी ने अपीलार्थी को छोड़ दिया और तत्पश्चात् 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) और धारा 13(I)(ii) के अधीन विवाह के विघटन की ईप्सा करते हुए दिल्ली में याचिका फाइल की है । वादी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध गाजियाबाद के लिंक रोड पुलिस थाना में एक असंज्ञेय रिपोर्ट/प्रथम इत्तिला रिपोर्ट यह अभिकथित करते हुए दर्ज कराई गई कि विजय गांधी ने वादग्रस्त संपत्ति को छोड़ दिया और अपीलार्थी आज भी उस संपत्ति में निवास कर रहा है । यह निवेदन किया गया कि वर्ष 1998 में अपीलार्थी ने विजय गांधी, जिसका उसके साथ विवाह हुआ था, की अनुपस्थिति में उसको वादग्रस्त संपत्ति के प्रथम तल में रहने की अनुज्ञा प्रदान कर दी थी । मात्र इस कारणवश कि विजय गांधी ने वादग्रस्त संपत्ति को छोड़ दिया था, का यह अर्थ नहीं होगा कि अपीलार्थी का अपने वैवाहिक मकान और गृहस्थी में हित समाप्त हो गया है ।

अपीलार्थी के काउंसेल ने मेरा ध्यान 2005 के घेरलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् '2005 का अधिनियम' कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 2(ध) और धारा 17 की ओर आकर्षित किया जो 'साझा गृहस्थी' को परिभाषित करती है और निवेदन किया कि पुत्र को पक्ष बनाए जाने के अभाव में वह गृहस्थी जिसमें वह प्रथम बार अपने पति के साथ प्रविष्ट हुई, उसकी साझा गृहस्थी बनी रहेगी और उसको निष्कासित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके पति और प्रत्यर्थी का पुत्र विजय गांधी को पक्ष नहीं बनाया जाता ।

अपीलार्थी के काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में कविता गंभीर **बनाम** हरि चंद गंभीर और एक अन्य [(2009) 162 डी. एल. टी. 459] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । उन्होंने निशांत शर्मा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [2013 (1) आर. सी. आर. (सिविल) 410] और नीतू राणा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [2016 (2) ए. सी. आर. 1737] वाले मामलों में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निणर्यों का भी अवलंब लिया ।

इसके विपरीत प्रत्यर्थी के काउंसेल ने एस. आर. बत्तरा और एक अन्य **बनाम** तरुण बत्तरा [(2007) 3 एस. सी. सी. 169] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 29 में 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) में समाविष्ट उपबंधों का उल्लेख किया और मताभिव्यक्ति की कि 'साझी गृहस्थी' से तात्पर्य उस मकान से होगा जो पति से संबंधित हो या उसके द्वारा किराए पर लिया गया हो या वह मकान जो उस संयुक्त परिवार से संबंधित हो, जिसका पति एक सदस्य हो । प्रश्नगत संपत्ति न तो **अमीत बत्तरा** से संबंधित और न ही उसके द्वारा किराए पर ली गई थी और न ही यह किसी संयुक्त परिवार की संपत्ति है, जिसका पति अमीत बत्तरा एक सदस्य है, इसलिए, यह संपत्ति अपीलार्थी संख्या 2 जो अमीत बत्तरा की माता हैं, की अनन्य

संपत्ति है । इसलिए, इस संपत्ति को 'साझी गृहस्थी' नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार से विरेन्द्र कुमार और एक अन्य **बनाम** जसवंत राय और एक अन्य [2011 की आर. ए. एस. संख्या 46] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया गया, जिसके पैरा 7 में यह उल्लेख किया गया है कि यदि प्रतिवादी ने मकान के प्रथम तल पर कमरों के निर्माण के लिए धन का इंतजाम किया, तो इससे प्रतिवादी को उस मकान के नीचे स्थित भूमि में अपने आप ही कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो जाएगा, जैसे कि किसी भूमि पर किसी बड़ी संरचना का निर्माण किए जाने से कोई वादग्रस्त भूमि का स्वामी नहीं हो जाता ।

कन्हैया लाल और एक अन्य **बनाम** नाथी लाल [2017 की आर. एस. संख्या 27] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया गया, जिसमें पैरा 15 और 16 में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि मात्र इस कारणवश कि ससुर ने प्रेम और अनुराग के कारण अपने पुत्र और पुत्रवधू को मकान के प्रथम तल पर निवास करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी थी, का यह अर्थ नहीं होगा कि वह अपने अवज्ञाकारी पुत्र और पुत्रवधू, जो उसके साथ निरंतर रूप से उपद्रव वाला आचरण कर रहे हैं, को आश्रय या निवास उपलब्ध कराने की किसी विधिक बाध्यता के अधीन है । पैरा 16 में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि कोई भी कानून जो विवाहित स्त्रियों के अधिकारों पर विचार करता है, चाहे वह 1955 का हिंदू विवाह अधिनियम हो, 1956 का हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम हो, 1956 का हिंदू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम हो या 2005 का घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम हो, विवाहित स्त्रियों को उनके पति के माता-पिता के विरुद्ध निवास को सम्मिलित करते हुए भरणपोषण का अधिकार प्रदान नहीं करते । विधि विवाहित महिला को उसके सास-ससुर से भरणपोषण का दावा करने का अधिकार केवल 1956 के हिंदू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 19 के अधीन आच्छादित परिस्थितियों में ही करती है । अतः, अपीलार्थी द्वारा

दी गई दलील कि सिविल अदालत को 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम और 2005 के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं है, अस्वीकार किए जाने योग्य है ।

प्रत्यर्थी-वादी के काउंसेल ने दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए इन विचारों को पढ़ते हुए निवेदन किया कि दोनों उच्च न्यायालयों द्वारा निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों में कोई शैथिल्य नहीं है और इस द्वितीय अपील में निष्कर्ष निकालते समय दोनों ही उच्च न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में कोई व्यवधान उत्पन्न किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

इसी प्रक्रम पर अपीलार्थी के काउंसेल ने निवेदन किया कि ऊपर वर्णित समस्त निर्णयों में पति को पक्ष बनाया गया था । वास्तव में **कन्हैया लाल और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि पुत्र और पुत्रवधू अर्थात् अपीलार्थी की हैसियत किसी अनुज्ञप्तिधारी से अधिक नहीं हो सकती और वह हैसियत भी समाप्त हो जाती है जब उन पर वादग्रस्त संपत्ति को रिक्त करने के प्रयोजनार्थ नोटिस तामील कर दिया गया । वादग्रस्त संपत्ति के स्वअर्जित संपत्ति होने के कारण प्रत्यर्थी-वादी अपने पुत्र और पुत्रवधू का भरणपोषण एस. आर. बत्तरा **बनाम** तरुणा बत्तरा (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में प्रतिपादित विधिक स्थित को दृष्टि में रखते हुए करने की किसी बाध्यता के अंतर्गत नहीं हैं । इसलिए, इन विनिश्चयों को दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों के साथ निर्दिष्ट नहीं किया, जैसाकि **कविता गंभीर और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्दिष्ट किया गया है, वे अपने स्वयं के तथ्यों के आधार पर निर्दिष्ट हुए हैं ।

यह द्वितीय अपील पक्षों के काउंसेलों को सुने जाने के पश्चात् विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों के आधार पर विचारार्थ ग्रहण की जाती है –

'(i) क्या अपीलार्थी-पुत्रवधू को 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) के उपबंधित साझी गृहस्थी की परिभाषा के अनुसार पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् स्वीकृतत: वादग्रस्त संपत्ति के प्रथम तल पर निवास कर रही थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित किया जा सकता है ?

(ii) चूंकि पक्षों का प्रतिनिधित्व हो चुका है, कोई पुन: सूचना अपेक्षित नहीं है ।'

2019 के सिविल प्रकीर्ण स्थगन आवेदन संख्या आई. ए. संख्या 1 को सुना । यह निर्देशित किया जाता है कि सूचीबद्ध किए जाने की अगली तारीख तक 2017 की सिविल अपील संख्या 63, सुजाता गांधी **बनाम** एस. बी. गांधी में गाजियाबाद के अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 13 द्वारा पारित तारीख 19 सितंबर, 2010 और 23 सितंबर, 2019 के आक्षेपित निर्णयों और डिक्री, जिसके द्वारा 2014 के मूल वाद संख्या 907, एस. बी. गांधी **बनाम** सुजाता गांधी में गाजियाबाद के सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ वर्ग) द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की तारीख 8 मार्च, 2017 को पुष्टि की गई, का निष्पादन स्थगित रहेगा ।

पक्षों की सहमति से मामले को अंतिम सुनवाई हेतु तारीख 22 जनवरी, 2020 को सूचीबद्ध किया जाए ।"

6. विस्तारपूर्वक दलील देते हुए मेरा ध्यान 2005 के अधिनियम की धारा 17 की ओर आकर्षित किया गया । दलीलें मुख्यत: 'साझी गृहस्थी' के संबंध में दी गई । प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **कविता गंभीर** बनाम **हरि चंद गंभीर और एक अन्य**[1], **नीतू राणा** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2], **निशांत शर्मा** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[3], **सुभाष और**

---

[1] (2009) 162 डी. एल. टी. 459.

[2] (2016) 94 ए. सी. सी. 408.

[3] (2012) 78 ए. सी. सी. 328.

अन्य बनाम **शिवानी**[1], **प्रभाकरण एस.** बनाम **केरल राज्य**[2], **रोमा राजेश तिवारी** बनाम **राजेश दीनानाथ तिवारी** (2017 की रिट याचिका संख्या 10696), **प्रिती सतीजा** बनाम **राजकुमारी**[3], **बी. पी. अचाला आनंद** बनाम **एस. अप्पी रेड्डी और एक अन्य**[4], **हरबंश लाल मलिक** बनाम **पायल मलिक**[5] और **एस. आर. बत्तरा** बनाम **तरुणा बत्तरा**[6] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया ।

7. 'साझी गृहस्थी' की परिभाषा पर अधिक जोर देते हुए निवेदन किया गया कि प्रश्नगत मकान याची का वैवाहिक मकान है और साझा मकान है चूंकि विवाह के पश्चात् प्रतिवादी अपने पति के साथ इसी मकान में निवास करने लगी और यद्यपि उसके पति ने मकान को छोड़ दिया है, फिर भी उसको इस मकान से निष्कासित नहीं किया जा सकता जब तक कि पति को वाद में पक्ष नहीं बनाया जाता और उसकी अनुज्ञप्ति को वादी द्वारा अभिखंडित नहीं किया जाता । यह निवेदन भी किया गया कि किसी भी परिस्थिति में पति को पक्ष बनाया जाना आवश्यक है ताकि प्रतिवादी पति की प्रतिपरीक्षा के आधार पर यह दर्शित करने के योग्य हो सके कि प्रश्नगत मकान साझा मकान है । निवेदन का सार यह है कि जब तक कि पुत्रवधू के निष्कासन की डिक्री की ईप्सा करने वाले इस मामले में पति को पक्ष नहीं बनाया जाता, उसको निष्कासित नहीं किया जा सकता चूंकि वह वादी के पुत्र के साथ उसके विवाह के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति में प्रविष्ट हुई थी ।

8. इसके विपरीत वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को दृष्टि में रखते हुए वादी प्रश्नगत मकान का स्वीकृतत: अनन्य स्वामी है और इसलिए उस मकान को साझा मकान नहीं कहा जा

---

[1] (2016) 4 आर. सी. आर. (सिविल) 21.

[2] (2009) 1 के. एल. जे. 278.

[3] ए. आई. आर. 2014 दिल्ली 46.

[4] (2005) 3 एस. सी. सी. 313.

[5] आई. एल. आर. 2010 (6) दिल्ली 625.

[6] (2007) 3 एस. सी. सी. 169.

सकता, इसलिए पति को पक्ष बनाया जाने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता और उसको पक्ष बनाया जाना बिल्कुल ही अनावश्यक है । उन्होंने आगे निवेदन किया कि वादी का स्वामित्व विवादित नहीं है और वास्तव में उसके स्वामित्व को प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में स्वीकार किया गया है और उसके पति को पक्ष न बनाए जाने के संबंध में आक्षेप निचले न्यायालयों के समक्ष कभी नहीं उठाया गया और इसलिए, अब इस आक्षेप को नहीं उठाया जा सकता । उन्होंने 2011 के आर. एस. ए. संख्या 46, **वीरेन्द्र कुमार और एक अन्य** बनाम **जसवंत राय और एक अन्य,** जिसको तारीख 10 मार्च, 2011 को निर्णीत किया गया, 2017 के आर. एस. ए. संख्या 27, **कन्हैया लाल और एक अन्य** बनाम **नाथी लाल,** जिसे तारीख 16 फरवरी, 2017 को निर्णीत किया गया, **शुमिता दीदी संधू** बनाम **संजय सिंह संधू और अन्य**[1] और **एस. आर. बत्तरा और एक अन्य** बनाम **तरुणा बत्तरा**[2] वाले मामलों में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया ।

9. प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने खंडन शपथपत्र में निवेदन किया कि 2005 के अधिनियम पर दलीलें उस समय नहीं उपलब्ध थी जब **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाला निर्णय दिया गया था और इसलिए यह निर्णय विभेद्य है और वादी द्वारा इस निर्णय का अवलंब नहीं लिया जा सकता । उन्होंने आगे निवेदन किया कि किसी भी परिस्थिति में पत्नी को ऐसी स्थिति में बेघर नहीं किया जा सकता, इसलिए, पति को पक्ष बनाया जाना आवश्यक है ।

10. इस मामले में आगे अग्रसर होने के पूर्व यह सुसंगत होगा कि 2005 के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम की धारा 2(ध), धारा 17 और धारा 26 का उल्लेख किया जाए, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "2(ध). 'साझी गृहस्थी' से ऐसी गृहस्थी अभिप्रेत है जहां व्यथित व्यक्ति रहता है या किसी घरेलू नातेदारी में या तो अकेले

---

[1] 2007 (96) डी. आर. जे. 697.

[2] (2007) 3 एस. सी. सी. 169.

या प्रत्यर्थी के साथ किसी प्रक्रम पर रह चुका है और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है, जो चाहे उस व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी के संयुक्त स्वामित्व या हिस्सेदारी में है, या उनमें से किसी के स्वामित्व या किराएदारी में है, जिसके संबंध में या तो व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हक, हित या साम्या रखते हैं और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है, जो ऐसे अविभक्त कुटुंब का अंग हो सकती है, जिसका प्रत्यर्थी इस बात पर ध्यान दिए बिना कि प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति का उस गृहस्थी में कोई अधिकार, हक या हित है, एक सदस्य है ।

17. **साझी गृहस्थी में निवास करने का अधिकार** – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी घरेलू नातेदारी में प्रत्येक महिला को साझी गृहस्थी में निवास करने का अधिकार होगा, चाहे वह उसमें कोई अधिकार, हक या फायदाप्रद हित रखती हो या नहीं ।

(2) विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण में के सिवाय, कोई व्यथित व्यक्ति, प्रत्यर्थी द्वारा किसी साझी गृहस्थी या उसके किसी भाग से बेदखल या अपवर्जित नहीं किया जाएगा ।

26. **अन्य वादों और विधिक कार्यवाहियों में अनुतोष** – (1) धारा 18, धारा 19, धारा 20, धारा 21 और धारा 22 के अधीन उपलब्ध कोई अनुतोष किसी सिविल न्यायालय, कुटुंब न्यायालय या किसी दंड न्यायालय के समक्ष किसी व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी को प्रभावी करने वाली किसी विधिक कार्यवाही में भी, चाहे ऐसी कार्यवाही इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् आरंभ की गई हो, मांगा जा सकेगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई अनुतोष किसी अन्य अनुतोष के अतिरिक्त और उनके साथ-साथ जिनकी व्यथित व्यक्ति किसी सिविल या दंड न्यायालय के समक्ष ऐसे वादकारण या विधिक कार्यवाही में वांछा करे, मांगा जा सकेगा ।

(3) यदि इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही से भिन्न किन्हीं परिस्थितियों में व्यथित व्यक्ति द्वारा कोई अनुतोष अभिप्राप्त कर लिया गया है, तो वह ऐसे अनुतोष को अनुदत्त करने वाले मजिस्ट्रेट को सूचित करने के लिए बाध्य होगा ।"

11. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3, 9 और 10 के उपबंधों का उल्लेख किया जाना भी उचित होगा, जिनको नीचे उद्धृत किया गया है :–

"3. **प्रतिवादियों के रूप में कौन संयोजित किए जा सकेंगे** – वे सभी व्यक्ति प्रतिवादियों के रूप में एक वाद में संयोजित किए जा सकेंगे, जहां –

(क) एक ही कार्य या संव्यवहार या कार्यों या संव्यवहारों के आवली के बारे में या उससे पैदा होने वाले अनुतोष पाने का कोई अधिकार उसके विरुद्ध संयुक्ततः या पृथक्तः या अनुकल्पतः वर्तमान होना अभिकथित है ; और

(ख) यदि ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध पृथक्-पृथक् वाद लाए जाते तो विधि या तथ्य का सामान्य प्रश्न पैदा होता ।

9. **कुसंयोजन और असंयोजन** – कोई भी वाद पक्षकारों के कुसंयोजन या असंयोजन के कारण विफल नहीं होगा और न्यायालय हर वाद में विवादग्रस्त विषय का निपटारा वहां तक कर सकेगा, जहां तक उन पक्षकारों के, जो उसके वस्तुतः समक्ष हैं, अधिकारों और हितों का संबंध है –

परंतु इस नियम की कोई बात किसी आवश्यक पक्षकार के असंयोजन को लागू नहीं होगी ।

10. **गलत वादी के नाम से वाद** – (1) जहां कोई वाद वादी के रूप में गलत व्यक्ति के नाम में संस्थित किया गया है या जहां यह संदेहपूर्ण है कि वह सही वादी के नाम में संस्थित किया गया है, वहां यदि वाद के किसी भी प्रक्रम में न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि वाद सद्भाविक भूल से संस्थित कराया

गया है और विवाद में के वास्तविक विषय के अवधारण के लिए ऐसा करना आवश्यक है तो, वह ऐसे निबंधनों पर, जो वह न्यायसंगत समझे, वाद के किसी भी प्रक्रम में किसी अन्य व्यक्ति को वादी के रूप में प्रतिस्थापित किए जाने या जोड़े जाने का आदेश दे सकेगा ।

(2) **न्यायालय पक्षकारों का नाम काट सकेगा या जोड़ सकेगा** – न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में या तो दोनों पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर या उसके बिना और ऐसे निबंधनों पर जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, यह आदेश दे सकेगा कि वादी के रूप में या प्रतिवादी के रूप में अनुचित तौर पर संयोजित किसी भी पक्षकार का नाम काट दिया जाए और उस व्यक्ति का नाम, जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में संयोजित किया जाना चाहिए था या न्यायालय के सामने जिसकी उपस्थिति वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी तौर पर पूरी तरह न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक हो, जोड़ दिया जाए ।

(3) कोई भी व्यक्ति वाद मित्र के बिना वाद लाने वाले वादी के रूप में अथवा उस वादी के, जो किसी निर्योग्यता के अधीन है, वादमित्र के रूप में उसकी सहायता के बिना जोड़ा जाएगा ।

(4) **जहां प्रतिवादी जोड़ा जाए, वहां वादपत्र का संशोधन किया जाना** – जहां कोई प्रतिवादी जोड़ा जाता है, वहां जब तक न्यायालय अन्यथा निर्दिष्ट न करे, वादपत्र का इस प्रकार संशोधन किया जाएगा, जैसा आवश्यक हो और समन की और वादमित्र की संशोधित प्रतियों की तामील नए प्रतिवादी पर और यदि न्यायालय ठीक समझे तो मूल प्रतिवादी पर की जाएगी ।

(5) इंडियन लिमिटेशन ऐक्ट, 1877 (1877 का 15) की धारा 22 के उपबंधों के अधीन रहते हुए प्रतिवादी के रूप में जोड़े गए किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई समन की तामील पर ही प्रारंभ की गई समझी जाएगी ।"

12. जहां तक इस दलील का संबंध है कि प्रश्नगत मकान 'साझी गृहस्थी' है, यह उल्लेख किया जाना सुसंगत होगा कि वादी द्वारा वादपत्र के पैरा 1 में यह सुस्पष्ट रूप से अभिकथित किया गया है कि वह उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद के सूर्य नगर स्थित आवासीय मकान संख्या 8-242 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा स्वामी और कब्जेदार हैं । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना पर्याप्त होगा कि प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के पैरा 1 में वादपत्र के पैरा 1 की अंतर्वस्तु को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है । इस तथ्य को विवादित करते हुए लिखित कथन में कोई भी अतिरिक्त अभिवाक् नहीं किया गया है । इसलिए कोई भी साक्ष्य, दस्तावेजी या मौखिक, पर अभिवचन की अनुपस्थिति में विचार नहीं किया जा सकता । **अड़िकला नारासा रेड्डी** बनाम **वेंकटराम रेड्डी गिरी**[1] वाले मामले जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्ष को आवश्यक और तात्विक तथ्यों का अभिवाक् करना चाहिए और पक्ष अभिवचनों के परे नहीं जा सकते ; अभिवचनों की अनुपस्थिति में साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता, कोई अनुतोष अभिवचनों में न पाए जाने पर प्रदान नहीं किया जा सकता, में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया, जिसके पैरा 15 को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "15. इस न्यायालय ने निरंतर रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय पक्षों के अभिवचनों के परे नहीं जा सकते । पक्षों को उचित अभिवचन प्रस्तुत करने चाहिए और अपने मामले को साक्ष्य प्रस्तुत करने के द्वारा साबित करना चाहिए कि किसी विशिष्ट अनियमितता/अवैधता के कारण निर्वाचन का परिणाम 'तात्विक रूप से प्रभावित' हो गया है । इस स्थिरीकृत विधिक प्रतिपादना के बाबत कोई विवाद नहीं हो सकता कि 'इस नियम के परिणामस्वरूप कि अभिवचनों में अनुतोष नहीं पाया गया, अनुतोष प्रदान नहीं किया जाना चाहिए' । अत: मामले का विनिश्चय पक्षों द्वारा किए गए अभिवचनों के परे आधारों पर आधारित नहीं होना चाहिए । पक्षों द्वारा अभिवचनों की अनुपस्थिति में साक्ष्य, यदि

[1] (2014) 5 एस. सी. सी. 312.

कोई हो, पेश किया जाना चाहिए । यह भी स्थिरीकृत विधिक प्रतिपादना है कि किसी भी पक्ष को अपने अभिवचनों के परे जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए और पक्ष अपने पक्षकथन के समर्थन में समस्त आवश्यक और तात्विक तथ्यों, जिनको उनके द्वारा स्थापित किया गया है, का आश्रय लेने के लिए बाध्य हैं । अभिवचनों के आधार पर यह सुनिश्चित होता है कि प्रत्येक पक्ष उन समस्त प्रश्नों के प्रति उत्तरदायी है, जिनको उठाए जाने की संभाव्यता है और उनको न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय के समक्ष समस्त सुसंगत साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा । अब मात्र यह विवाद्यक उद्भूत होता है कि जब तथ्य या विधि की तात्विक प्रतिपादना की पुष्टि एक पक्ष द्वारा की जाती है ओर दूसरे पक्ष द्वारा उससे इनकार किया जाता है । इसलिए, न्यायालय के लिए यह न तो वांच्छित है और न ही अनुज्ञेय कि ऐसे विवाद्यकों को विरचित किया जाए, जो अभिवचनों से उद्भूत न होते हों । न्यायालय मात्र इस प्रयोजन के लिए कि निर्वाचन को व्यर्थ अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त सामग्री मिल जाए, किसी निर्वाचन याची को कभी न समाप्त होने वाली किसी जांच में अंतर्वलित होने के लिए सक्षम बनाने हेतु मतपत्रों की पुनर्गणना के लिए आदेश पारित करने के विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते । पुनर्गणना का आदेश तभी पारित किया जा सकता, यदि याची अपना पक्षकथन तात्विक तथ्यों के प्रकथन द्वारा समर्थित मजबूती के साथ प्रस्तुत करता है । (देखें : राम सेवक यादव **बनाम** हुसैन कामिल किदवई और अन्य, ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1249, भाभी **बनाम** शिवगोविन्द और अन्य, ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2117 और एम. चिन्ना सामी **बनाम** के. सी. तलानी सामी और अन्य (2004) 6 एस. सी. सी. 341.)"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

13. इन सब बातों के बाद भी दोनों ही निचले न्यायालयों ने यह संवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि प्रतिवादिनी वादी के पक्षकथन

का खंडन कर पाने में या उसकी दलीलों/प्रकथनों को साबित कर पाने में कि वादी मकान का अनन्य स्वामी नहीं है, पूर्णतया विफल रही है । प्रतिवादिनी-अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा जिन विनिश्चयों का अवलंब लिया गया, उनकी सहायता लेते हुए इस बात पर अत्यधिक जोर दिया गया कि जब तक कि पति को वाद में पक्ष नहीं बताया जाता, उसको (प्रतिवादिनी को) इस बात को साबित करने का अवसर प्राप्त नहीं होगा कि वादी विवादित मकान का अनन्य स्वामी नहीं है और यह मकान एक साझा मकान है । यह दलील पूर्णतया भ्रम पूर्ण है चूंकि वादी को मकान के अनन्य स्वामी स्वीकार किया जा चुका है और प्रतिवादिनी के पति के आवश्यक पक्ष होने का अभिवाक् निचले न्यायालय के समक्ष कभी नहीं उठाया गया ।

14. इस संदर्भ में **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया गया, जिसके पैरा 7, 21 22, 23, 24, 25, 26, 27, 29 और 30 को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "7. यह स्वीकृत तथ्य है कि **श्रीमती तरुणा बत्तरा** अपने पति से विवाद के कारण अपने माता-पिता के निवास पर स्थानांतरित हो गई थी । उसने बाद में अभिकथित किया कि उसने अपीलार्थी संख्या 2 के मकान, जो दिल्ली के अशोक विहार, फेज-I में स्थित संपत्ति संख्या बी.-135 हैं, में प्रवेश करने का प्रयास किया था । किंतु उसने पाया कि मकान के मुख्य प्रवेश पर ताला बंद था और इसलिए उसने स्वयं को मकान में प्रवेश के लिए समर्थ बनाने हेतु आज्ञापक व्यादेश के लिए 2003 का वाद संख्या 87 फाइल किया । अपीलार्थियों का पक्षकथन यह था कि इसके पूर्व कि विचारण न्यायाधीश द्वारा उनकी पुत्रवधू श्रीमती तरुणा बत्तरा द्वारा फाइल किए गए वाद में कोई आदेश पारित किया जा पाता, श्रीमती तरुणा बत्तरा ने अपने माता-पिता के साथ बलपूर्वक अपीलार्थी संख्या 2, जो श्रीमती तरुणा बत्तरा की सास हैं, के अशोक विहार स्थित मकान के ताले तोड़ दिए । अपीलार्थियों ने अभिकथित किया कि

उनकी पुत्रवधू द्वारा आतंकित किया गया है और इसी कारणवश उनको कुछ समय अपने कार्यालय में रहना पड़ा था ।

21. यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि विद्वान् वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश द्वारा इस बाबत निकाले गए निष्कर्ष कि वास्तव में श्रीमती तरुणा बत्तरा प्रश्नगत परिसर में निवास नहीं कर रही थी, एक तथ्यों के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष है, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । इसलिए, श्रीमती तरुणा बत्तरा किसी व्यादेश का दावा नहीं कर सकती, जिसके द्वारा अपीलार्थियों को उसको प्रश्नगत संपत्ति से बेदखल करने से मात्र इस कारणवश निषिद्ध किया जा सके कि वह उक्त संपत्ति के कब्जे में नहीं थी और इसलिए बेदखली का प्रश्न उद्भूत नहीं होता ।

22. हमारा उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, यह विचार है कि प्रश्नगत मकान को 2005 के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कह कर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 2(ध) के अर्थान्तर्गत 'साझी गृहस्थी' नहीं कहा जा सकता । धारा 2(ध) इस प्रकार है –

> "2(ध). 'साझी गृहस्थी' से ऐसी गृहस्थी अभिप्रेत है जहां व्यथित व्यक्ति रहता है या किसी घरेलू नातेदारी में या तो अकेले या प्रत्यर्थी के साथ किसी प्रक्रम पर रह चुका है और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है, जो चाहे उस व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी के संयुक्त स्वामित्व या हिस्सेदारी में है, या उनमें से किसी के स्वामित्व या किराएदारी में है, जिसके संबंध में या तो व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हक, हित या साम्या रखते हैं और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है, जो ऐसे अविभक्त कुटुंब का अंग हो सकती है, जिसका प्रत्यर्थी इस बात पर ध्यान दिए बिना कि प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति का उस गृहस्थी में कोई अधिकार, हक या हित है, एक सदस्य है ।

23. प्रत्यर्थी श्रीमती तरुणा बत्तरा के विद्वान् काउंसेल ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 17 और 19(1) का अभी अवलंब लिया है, जो निम्नलिखित हैं –

> 17. **साझी गृहस्थी में निवास करने का अधिकार** – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी घरेलू नातेदारी में प्रत्येक महिला को साझी गृहस्थी में निवास करने का अधिकार होगा, चाहे वह उसमें कोई अधिकार, हक या फायदाप्रद हित रखती हो या नहीं ।
>
> (2) विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण में के सिवाय, कोई व्यथित व्यक्ति, प्रत्यर्थी द्वारा किसी साझी गृहस्थी या उसके किसी भाग से बेकब्जा या अपवर्जित नहीं किया जाएगा ।
>
> 19. **निवास आदेश** – (1) धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन का निपटारा करते समय, मजिस्ट्रेट यह समाधान होने पर कि घरेलू हिंसा हुई है तो, निम्नलिखित निवास आदेश पारित कर सकेगा –
>
> (क) प्रत्यर्थी को साझी गृहस्थी से, किसी व्यक्ति के कब्जे को बेकब्जा करने या किसी अन्य रीति से उस कब्जे में विघ्न डालने से अवरुध करना, चाहे प्रत्यर्थी उस साझी गृहस्थी में विधिक या साधारण रूप से हित रखता है या नहीं ;
>
> (ख) प्रत्यर्थी को उस साझी गृहस्थी से स्वयं को हटाने का निर्देश देना ;
>
> (ग) प्रत्यर्थी या उसके किसी नातेदारों को साझी गृहस्थी के किसी भाग में, जिसमें व्यथित व्यक्ति निवास करता है, प्रवेश करने से अवरुध करना ;
>
> (घ) प्रत्यर्थी को किसी साझी गृहस्थी के अन्य संक्रांत करने या व्ययनित करने या उसे विलंगमित करने से अवरुध करना ;

(ड.) प्रत्यर्थी को मजिस्ट्रेट की इजाजत के सिवाय साझी गृहस्थी में अपने अधिकार त्यजन से अवरुध करना ; या

(च) प्रत्यर्थी को व्यथित व्यक्ति के लिए उसी स्तर की अनुकल्पिक वास सुविधा, जैसी वह साझी गृहस्थी में उपयोग कर रही थी या उसके लिए किराए का संदाय करने, यदि परिस्थितियां ऐसी अपेक्षा करें, सुनिश्चित करने के लिए निदेश देना :

परंतु यह कि खंड (ख) के अधीन कोई आदेश किसी व्यक्ति के, जो महिला है, विरुद्ध पारित नहीं किया जाएगा ।

24. प्रत्यर्थी श्रीमती तरुणा बत्तरा के विद्वान् काउंसेल ने अभिकथित किया कि साझी गृहस्थी की परिभाषा में वह गृहस्थी भी सम्मिलित है जिसमें व्यथित व्यक्ति निवास करता है या किसी प्रक्रम पर किसी घरेलू नातेदारी में निवास कर चुका है । उन्होंने दलील दी कि चूंकि प्रत्यर्थी स्वीकृतत: प्रश्नगत संपत्ति में पूर्व में निवास कर चुकी है, इसलिए वह संपत्ति उसकी साझी गृहस्थी है ।

25. हम इस निवेदन से सहमत नहीं हो सकते ।

26. यदि उपरोक्त निवेदन को स्वीकार किया जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि भूतकाल में जहां कहीं भी पति और पत्नी एक साथ रहे हैं, वह संपत्ति साझी गृहस्थी हो जाएगी । यह नितांत रूप से संभव है कि पति और पत्नी दर्जनों स्थानों पर एक साथ रहे हों, अर्थात् पति के पिता के साथ, पति के नाना-नानी के साथ, उसके मामा-मामी, चाचा, चाची, भाइयों, बहनों, भतीजों, भतीजियों इत्यादि के साथ । यदि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निर्वचन को स्वीकार कर लिया जाता है, तो पति के नातेदारों के ये सभी मकान साझी गृहस्थी हो जाएंगे तब पत्नी अपने पति के नातेदारों के इन सभी मकानों में रहने के लिए भलीभांति जोर दे सकेगी क्योंकि वह भूतकाल में अपने पति के

साथ इन सभी मकानों में कुछ अवधियों के लिए निवास कर चुकी है । इस प्रकार का दृष्टिकोण अराजकता की ओर ले जाएगा और बेतुका है ।

27. यह सुस्थापित है कि कोई भी निर्वचन जो बेतुकेपन की ओर ले जाता हो, स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए ।

29. जहां तक अधिनियम की धारा 17(1) का संबंध है, हमारे विचार में पत्नी केवल किसी साझी गृहस्थी में निवास के अधिकार के दावे की हकदार है, और किसी 'साझी गृहस्थी' का आशय ऐसे मकान से होगा, जो पति से संबंधित हो या उसके द्वारा किराए पर दिया गया हो, या उस मकान से होगा जो किसी ऐसे संयुक्त परिवार से संबंधित हो जिसका पति सदस्य है । वर्तमान मामले में प्रश्नगत संपत्ति न तो **अमीत बत्तरा** से संबंधित है और न ही उसके द्वारा किराए पर ली गई और न ही यह संयुक्त परिवार संपत्ति है जिसका अमीत बत्तरा सदस्य है । यह अमीत बत्तरा की माता, अपीलार्थी संख्या 2 की अनन्य संपत्ति है । इसलिए इसको 'साझी गृहस्थी' नहीं कहा जा सकता ।

30. इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिनियम की धारा 2(ध) में 'साझी गृहस्थी' की परिभाषा उचित ढंग से शब्दांकित नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस धारा के शब्द रचना अदक्ष प्रारूपण का नतीजा है, किंतु हम इस धारा का निर्वचन इस प्रकार से कर सकते हैं, जो तर्कसंगत हो और जो समाज में अराजकता को बढ़ावा न दे ।"

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

15. माननीय उच्चतम न्यायालय ने ऊपर उद्धृत पैरा 29 में साझी गृहस्थी के पहलू पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि जहां वादी अनन्य स्वामी होता है, तो उसे 'साझी गृहस्थी' नहीं कहा जा सकता । यहां तक कि पत्नी का वादी के विरुद्ध अनुकल्पिक आवास का दावा अस्वीकृत कर दिया गया और अभिनिर्धारित किया गया कि इस प्रकार का दावा केवल पति के विरुद्ध नहीं किया जा सकता और सास-ससुर या अन्य नातेदारों के विरुद्ध भी नहीं किया जा सकता ।

16. अत: न्यायालय के विचार में तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न और साथ ही सारभूत विधि का प्रश्न कि, क्या पुत्र वर्तमान वाद में पक्ष बनाए जाने का दायी है, उद्भूत नहीं होता । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उसका (पुत्र का) प्रतिवादी के रूप में पक्ष बनाया जाना आवश्यक होगा, यदि उसके विरुद्ध निष्कासन की डिक्री पारित की जानी है । यह स्थिरीकृत विधि है कि विधि का सारभूत प्रश्न केवल निचले न्यायालय के अभिवचनों और निर्णय से उद्भूत होता है । यह इंगित किए जाने की आवश्यकता नहीं है कि वर्तमान मामले में, जैसाकि पहले भी उल्लेख किया गया है, इस संबंध में कोई अभिवचन नहीं था कि पति प्रतिवादी के रूप में या पक्ष के रूप में आवश्यक है और उसको पक्ष बनाए जाने का दायी है । यहां तक कि निचले अपीली न्यायालय के समक्ष अपील में भी इस आधार पर विचार किया गया था । इसलिए इस आधार पर स्थिरीकृत विधि को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान द्वितीय अपील में विधि का कोई भी सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं होता या उद्भूत नहीं हो सकता । अत:, जहां तक वर्तमान द्वितीय अपील का संबंध है, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है ।

17. चूंकि द्वितीय अपील को विधि के सारभूत प्रश्न, जिन्हें तारीख 19 नवंबर, 2011 को विरचित किया गया, के आधार पर पहले ही विचारार्थ ग्रहण किया जा चुका है, पक्षों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया गया ताकि **श्री चूनी लाल** बनाम **मेहता सन्स लिमिटेड और सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को दृष्टि में रखते हुए प्रश्नों का उत्तर दिया जा सके, जिसका पैरा 6 नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "6. हम मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सामान्य रूप से सहमत हैं और हमारा यह विचार है कि जबकि बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया विचार संकीर्ण विचार है, पूर्ववर्ती नागपुर उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1314.

विचार अत्यधिक व्यापक है । इस बात का उचित रूप से विनिर्धारण किए जाने के लिए कि क्या किसी मामले में उठाया गया विधि का प्रश्न सारभूत प्रश्न है, हमारे विचार में इस बात पर विचार किया जाना होगा कि यह जनसामान्य के महत्व का प्रश्न है या क्या यह प्रश्न प्रत्यक्षत: और आधारभूत रूप से पक्षों की अधिकारों को प्रभावित करने वाला है और यदि ऐसा है, तो क्या यह इस भाव में एक सार्वजनिक प्रश्न है कि इस न्यायालय द्वारा या प्रिवी कौंसिल द्वारा या संघीय न्यायालय द्वारा इस प्रश्न को अंतिम रूप से स्थिरीकृत नहीं किया गया है या यह प्रश्न कठिनाइयों से मुक्त नहीं है या इस प्रश्न पर वैकल्पिक विचारों पर चर्चा अपेक्षित है । यदि इस प्रश्न को उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थिरीकृत कर दिया गया है या इस प्रश्न के विनिर्धारण के लिए लागू किए जाने वाले सामान्य सिद्धांत स्थिरीकृत हैं और उन सिद्धांतों को लागू किए जाने का का मात्र प्रश्न या किया गया अभिवाक् प्रत्यक्षत: निरर्थक है, तो वह प्रश्न विधि का सारभूत प्रश्न नहीं होगा ।"

18. इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3 और नियम 9 के उपबंधों का उल्लेख किया जाना सुसंगत होगा, जिनको पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया है । यह विवादित नहीं है कि पति वादग्रस्त संपत्ति में निवास नहीं कर रहा है और उसने उस मकान को छोड़ दिया है । इस बात पर भी विवाद नहीं है कि यदि माता-पिता अपने पुत्र को उनके मकान में निवास करने की अनुज्ञा प्रदान करते हैं, तो वह अनुज्ञप्तिधारी हो जाएगा । यदि उसकी पत्नी भी उसके साथ निवास कर रही है, तो वह भी अनुज्ञप्तिधारी होगी । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 1, नियम 3 स्पष्टत: उपबंधित करता है, 'प्रतिवादियों के रूप में कौन संयोजित किए जा सकेंगे ।' यहां पर यह बताना अनावश्यक है कि वर्तमान मामले में या यह कहा जाए कि किसी ऐसे मामले में जहां पुत्र ने अपने माता-पिता का मकान छोड़ दिया और वह वादग्रस्त संपत्ति में निवास नहीं कर रहा है, तो उसके विरुद्ध किसी अनुतोष का दावा न तो किया जाता है न ही किया जाएगा । चूंकि वह वादग्रस्त संपत्ति में

निवास नहीं कर रहा है, इसलिए पृथक् वाद फाइल किए जाने का प्रश्न या वह प्रश्न जो विधि या तथ्य के सामान्य प्रश्न को आकर्षित कर सकता है, उद्भूत नहीं होगा । इसलिए उसको वादी और प्रतिवादी के मध्य मुकदमे में आवश्यक पक्ष नहीं कहा जा सकता ।

19. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 9 के पक्षों के कुसंयोजन और असंयोजन का उपबंध है, जो स्पष्टत: उपबंधित करता है कि कोई भी वाद पक्षकारों के कुसंयोजन या असंयोजन के कारण विफल नहीं होगा और न्यायालय हर वाद में विवादग्रस्त विषय का निपटारा वहां तक कर सकेगा, जहां तक उन पक्षकारों के, जो वस्तुत: उसके समक्ष हैं, अधिकारों और हितों का संबंध है । तथापि, 1976 के अधिनियम संख्या 104 की धारा 52 द्वारा इस धारा में तारीख 1 फरवरी, 1977 से एक परंतुक जोड़ा गया जो यह है कि 'परंतु इस नियम की कोई बात किसी आवश्यक पक्षकार के असंयोजन को लागू नहीं होगी' । अत:, इस प्रयोजनार्थ कि किसी वाद को किसी पक्ष के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण अभिनिर्धारित किया जाए, यह साबित किया जाना चाहिए कि पक्ष, जिसे वाद में पक्ष नहीं बनाया गया है, वाद का आवश्यक पक्ष है, जिसकी उपस्थिति के बिना वाद में निर्णय नहीं किया जा सकता ।

20. 'प्रभुत्व' (Dominus Litis) का सिद्धांत पक्षों के संयोजन के संबंध में एक अत्यधिक विख्यात सिद्धांत है, जो स्पष्टत: उपबंधित करता है कि यदि किसी वाद में वादी का प्रभुत्व है, तो वह उस व्यक्ति का चुनाव कर लेगा जिससे वह मुकदमेबाजी चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा फाइल करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह किसी अनुतोष की ईप्सा नहीं करता । परिणामस्वरूप, कोई व्यक्ति, जो पक्ष नहीं है, को यह अधिकार नहीं है कि वह वादी की इच्छा के विरुद्ध वाद में पक्ष बने । तथापि, यह सामान्य सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) के उपबंधों के अध्यधीन है, जो उचित और आवश्यक पक्षों को पक्ष बनाए जाने के लिए उपबंधित करते हैं । यहां तक कि पूर्वोक्त उपबंधों में भी न्यायालय के लिए वैवेकिक अधिकार छोड़ा गया है, जिसका प्रयोग करते हुए न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किसी पक्ष को किसी

भी पक्ष द्वारा आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर या बिना आवेदन के किन्हीं शर्तों पर पक्ष बना सके और किसी भी व्यक्ति, जिसको अनुचित रूप से मुकदमे में पक्ष बना दिया गया है या मुकदमे में सम्मिलित कर लिया गया है, का नाम हटाए जाने के लिए निर्देशित कर सके और किसी भी ऐसे व्यक्ति का नाम पक्षों की सूची में बढ़ाए जाने के लिए निर्देशित कर सके जिसको वादी या प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित किया जाना था या जिसकी उपस्थिति न्यायालय को मामले का प्रभावी ढंग से और पूर्णरूपेण न्यायनिर्णयन करने में समर्थ बनाने के लिए और वाद में अंतर्वलित समस्त प्रश्नों को संबोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक थी ।

21. स्थिरीकृत विधि को दृष्टि में रखते हुए यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कोई आवश्यक पक्ष एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसको पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए और जिसकी अनुपस्थिति में न्यायालय द्वारा कोई प्रभावी डिक्री बिल्कुल भी पारित नहीं की जा सकती । उचित पक्ष वह पक्ष है जिसके बारे में यह संभव है कि वह आवश्यक पक्ष न हो, किंतु वह न्यायालय को वाद में अंतर्वलित विवाद के समस्त मामलों को संपूर्णत:, प्रभावी रूप से और पर्याप्त रूप से न्यायनिर्णीत करने के सक्षम बना देगा, यद्यपि संभव है कि वह व्यक्ति कोई ऐसा व्यक्ति न हो जिसके विरुद्ध कोई डिक्री पारित की जानी है । अत: यह स्पष्ट है कि यह नहीं कहा जा सकता कि विधि के क्रियान्वयन द्वारा किसी विशिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों की कोटि आवश्यक कक्ष है । जब तक कि कानूनी रूप से इस संबंध में उपबंधित नहीं कर दिया जाता । **मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **रीजेंसी कन्वेंसन सेंटर और होटल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को भी निर्दिष्ट किया गया । इस निर्णय के पैरा 13, 14 और 15 को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "13. <u>पक्षों के संयोजन के संबंध में सामान्य नियम यह है कि किसी वाद का वादी प्रभुत्व वाला पक्ष होने के नाते उन व्यक्तियों</u>

---

[1] (2010) 7 एस. सी. सी. 417.

का चुनाव कर सकता है, जिनके विरुद्ध वह मुकदमे को चलाना चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा फाइल करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध उसने किसी अनुतोष की ईप्सा नहीं की । इसके परिणामस्वरूप, कोई व्यक्ति जो किसी वाद में पक्ष नहीं है, को वादी की इच्छा के विरुद्ध वाद में संयोजित होने का अधिकार नहीं है । किंतु यह सामान्य नियम सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'संहिता') के आदेश 1, नियम 10(2) के उपबंधों के अध्यधीन है, जो उचित और आवश्यक पक्षों के संयोजन के लिए उपबंधित करता है । उक्त उपनियम को नीचे उद्धृत किया गया है –

> '**10(2) न्यायालय पक्षकारों के नाम काट सकेगा या जोड़ सकेगा** – न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में या तो दोनों पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर या उसके बिना और ऐसे निबंधनों पर, जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हों, यह आदेश दे सकेगा कि वादी के रूप में या प्रतिवादी के रूप में अनुचित तौर पर संयोजित किसी भी प्रक्षकार का नाम काट दिया जाए और किसी व्यक्ति का नाम, जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में ऐसे संयोजित किया जाना चाहिए था या न्यायालय के सामने जिसकी उपस्थिति वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी तौर पर और पूरी तरह न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक हो, जोड़ दिया जाए ।'

14. उक्त उपबंध यह स्पष्ट करता है कि न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में (विनिर्दिष्ट निर्वहन के लिए फाइल किए गए वादों को सम्मिलित करते हुए) दोनों पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर या उसके बिना और ऐसे निबंधनों पर, जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हों, यह आदेश दे सकेगा कि निम्नलिखित में से किसी भी प्रक्षकार का नाम वादी या प्रतिवादी के रूप में जोड़ दिया जाए : (क) किसी व्यक्ति का नाम जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में संयोजित किया जाना चाहिए था, किंतु

किया नहीं गया, या (ख) कोई व्यक्ति जिसकी उपस्थिति न्यायालय के समक्ष वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी तौर पर और पूरी तरह से न्यायनिर्णय और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक है । संक्षेप में न्यायालय को किसी भी व्यक्ति को, जिसे आवश्यक पक्ष या उचित पक्ष पाया जाता है, को पक्ष के रूप में जोड़ने का विवेकाधिकार दिया गया है ।

15. 'आवश्यक पक्ष' वह व्यक्ति है जिसको पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाना था और जिसकी अनुपस्थिति में न्यायालय द्वारा कोई प्रभावी डिक्री बिल्कुल भी पारित नहीं की जा सकती । यदि कोई 'यदि किसी आवश्यक पक्ष' को संयोजित नहीं किया जाता, तो वाद स्वमेव ही खारिज किए जाने योग्य है । कोई 'उचित पक्ष' एक ऐसा पक्ष है, जो यद्यपि आवश्यक पक्ष नहीं है, फिर भी वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी उपस्थिति न्यायालय को किसी वाद में अंतर्वलित विवादों में समस्त मामलों का पूर्णरूपेण, प्रभावी और पर्याप्त रूप से न्यायनिर्णयन करने के समर्थ बना देगी, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि वह कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसके पक्ष में या जिसके विरुद्ध डिक्री पारित की जानी है । यदि किसी व्यक्ति को उचित या आवश्यक पक्ष नहीं पाया जाता है, तो न्यायालय को उसे वादी की इच्छा के विरुद्ध संयोजित करने की कोई अधिकारिता नहीं है । मात्र इस तथ्य के आधार पर कि किसी व्यक्ति द्वारा वादी के विरुद्ध वाद में निर्णय के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति में अधिकार/हित सुनिश्चित किए जाने की संभाव्यता है, वह व्यक्ति विनिर्दिष्ट निर्वहन के लिए फाइल किए गए वाद का आवश्यक पक्ष या उचित पक्ष नहीं बन जाएगा ।"

(बल देने के रेखांकन किया गया है)

22. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **गुरमीत सिंह भाटिया** बनाम **किरणकांत रॉबिन्सन और अन्य**[1] वाले मामले में समान विचार

[1] ए. आई. आर. 2019 एस. सी. 3577.

व्यक्त किए और इस निर्णय के पैरा 5.2 में पूर्ववर्ती विधि पर विचारोपरांत जो अभिनिर्धारित किया गया उसके लेखांश को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "..... वादियों को किसी ऐसे पक्ष को संयोजित किए जाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह मुकदमा नहीं चलाना चाहता । यदि वह ऐसा करता है, तो ऐसे मामले में यह वादी के जोखिम पर होगा ।"

(बल देने के रेखांकन किया गया है)

23. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कस्तुरी** बनाम **उय्यमपेरुमल**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया जाता है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने 'प्रभुत्व के सिद्धांत' पर विचार किया । इस निर्णय का माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा नवीनतम रूप से अवलंब **गुरमीत सिंह भाटिया** बनाम **किरणकांत रॉबिन्सन और अन्य**[2] वाले मामले में लिया ।

24. इस पर अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 1, नियम 9 पक्षों के संयोजन और कुसंयोजन के लिए उपबंधित करता है । वर्ष 1977 से, जब 1976 के (संशोधन) अधिनियम संख्या 104 की धारा 52 द्वारा तारीख 1 फरवरी, 1977 से परंतुक को जोड़ा गया, नियम 9 के अधीन यह उपबंधित कर दिया गया कि कोई भी वाद पक्षकारों के कुसंयोजन या असंयोजन के कारण विफल नहीं होगा । इस बात को पूर्वोक्त संशोधन द्वारा जोड़े गए परंतुक द्वारा इस प्रभाव तक स्पष्ट किया गया कि 'परंतु इस नियम की कोई बात किसी आवश्यक पक्षकार के असंयोजन को लागू नहीं होगी'। अत: यह स्पष्ट है कि किसी मूल वाद में, जब तक कि कानूनी रूप से उपबंधित न कर दिया जाए, यह वादी के विवेक पर निर्भर होता है कि वह किसी व्यक्ति को पक्ष के रूप में संयोजित करे या जिसे वह मामले में प्रतिवादियों के रूप में सम्मिलित करे । यह केवल नियम 10(2) के

---

[1] (2006) 6 एस. सी. सी. 733.

[2] 2020 (1) ए. आर. सी. 381.

उपबंध के अधीन है कि न्यायालय द्वारा इस विशेषाधिकार का प्रयोग या तो पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन पर किया जाता है या यदि न्यायालय को उचित प्रतीत होता है कि कोई पक्ष वाद का आवश्यक या उचित पक्ष है, तो स्वप्रेरणा से । किसी पक्ष को आवश्यक पक्ष अभिनिर्धारित किए जाने की अपेक्षाएं कठोर प्रकृति की होती हैं और जैसाकि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ऊपर उद्धृत निर्णय में पहले ही अभिनिर्धारित किया गया है, कोई आवश्यक पक्ष वह व्यक्ति होता है जिसको न्यायालय द्वारा पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाना होता है और जिसकी अनुपस्थिति में प्रभावी डिक्री पारित नहीं की जा सकती । अत:, निष्कासन या व्यादेश के किसी वाद में यह वादी का वैवेकिक अधिकार होता है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति का चुनाव करे, जिसके विरुद्ध वह मुकदमा चलाना चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध वाद फाइल करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह किसी अनुतोष की ईप्सा नहीं करता । कुछ अधिनियमितियों में यह उपबंधित किया गया है कि किसी वाद में कतिपय पक्ष आवश्यक पक्ष होते हैं । यहां तक कि यदि सामान्य रूप से बात की जाए, तो उन मामलों में भी कानूनी रूप से यह उपबंधित किया गया है और आवश्यक पक्ष प्राय: या तो राज्य होते हैं या कोई अन्य कानूनी प्राधिकारी होता है और न कि कोई निजी व्यक्ति । उदाहणार्थ 1950 के उत्तर प्रदेश जमीदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम (2006 के उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 116) की धारा 176 (i) उपबंधित करती है कि कोई भूमिधर अपनी धृति के विभाजन के लिए वाद फाइल कर सकता है । इस धारा की उपधारा (2) उपबंधित करती है कि ऐसे प्रत्येक वाद में संबद्ध ग्राम सभा को पक्ष बनाया जाएगा । जैसीकि पहले चर्चा की गई है, निजी पक्षों के मध्य वाद में वादी का प्रभुत्व होता है, तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) के अधीन यह न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया गया है कि न्यायालय पक्षों को वाद से प्रथक कर सकेगा या संयोजित कर सकेगा । इस वैवेकिक अधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से किया जाना चाहिए और न कि मात्र सनक के आधार पर या किसी पक्ष द्वारा की गई मांग के आधार पर । न्यायालय द्वारा इस बाबत अपना समाधान अभिलिखित किया जाना चाहिए कि

वाद में किसी पक्ष को अंतर्वलित समस्त प्रश्नों के प्रभावी और संपूर्ण न्यायनिर्णयन के लिए संयोजित किया जाना है । अत:, निष्कासान या व्यादेश के किसी वाद में वादी का यह विवेकाधिकार है कि वह उस व्यक्ति का चुनाव करे जिसके विरुद्ध मुकदमा चलाना चाहता है और उसको किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जिसके विरुद्ध वह कोई अनुतोष नहीं चाहता ।

25. 'साझी गृहस्थी' जैसाकि 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन उपबंधित है, की परिभाषा पर वापस आते हुए **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले, जिसे पहले ही ऊपर व्यापक रूप से उद्धृत किया गया है और जिसमें उक्त परिभाषा पर विचार किया गया और प्रत्यर्थी (पत्नी) के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि साझी गृहस्थी की परिभाषा में वह मकान भी सम्मिलित है, जिसमें व्यथित व्यक्ति घरेलू नातेदारी में निवास करता है या किसी भी प्रक्रम पर निवास करता था, पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार किया गया और अस्वीकृत कर दिया गया, में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर पुन: विचार किया जाना सुसंगत होगा । उस मामले में तथ्यों के आधार पर भी यह निष्कर्ष निकाला गया था कि संपत्ति पति अमीत बत्तरा से संबंधित नहीं थी और न ही वह संयुक्त परिवार की संपत्ति थी, जिसका अमीत बत्तरा सदस्य था । यह संपत्ति अमीत बत्तरा की माता की अनन्य संपत्ति है । इसलिए इस संपत्ति को 'साझी गृहस्थी' नहीं कहा जा सकता । इसलिए पुत्रवधू का दावा अस्वीकृत कर दिया गया था । उक्त निर्णय को सुधार की गुंजाइश के अध्यधीन रहते हुए पढ़े जाने पर प्रथमदृष्टया यह प्रवर्तित होता है कि पति वाद का पक्ष नहीं था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुकल्पिक आवास का दावा केवल पति के विरुद्ध किया जा सकता है, न कि सास-ससुर या अन्य नातेदारों के विरुद्ध । उक्त मताभिव्यक्ति से स्पष्टत: यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान द्वितीय अपील में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में होगा । अन्य शब्दों में, साझे मकान की परिभाषा का दृष्टि में रखते हुए भी, जैसाकि 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन उपबंधित है, पुत्रवधू को पुत्र, जिसके साथ वह स्वीकृतत: विवाह

के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति में प्रविष्ट हुई थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित किया जा सकता है ।

26. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा **अम्बिका जैन** (उपरोक्त) वाले मामले पर दृढ़तापूर्वक बल दिया गया, जिसमें विचारण न्यायालय को उन सभी मामलों में पति को पक्ष बनाने का निर्देश दिया गया था, जिनमें उनको सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का स्वप्रेरणा से अवलंब लेते हुए पक्ष नहीं बनाया गया था । मैंने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3, नियम 9 और नियम 10 के उपबंधों पर पहले ही चर्चा की है । मैं पूर्वोक्त कारणों, जिन पर पहले चर्चा की जा चुकी है, को ध्यान में रखते हुए और साथ में **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी विचार करते हुए **अम्बिका जैन** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के साथ ससम्मान असहमत हूं । इसका एक अन्य कारण भी है । यदि उच्चतर न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का स्वप्रेरणा से अवलंब लेने का कोई निर्देश दिया गया है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के उपबंधों के अधीन विचारण न्यायालय पर छोड़ा गया विवेकाधिकार अब आगे विचारण न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार नहीं होगा । निर्वचन का यह स्वर्णिम नियम है कि जब कानून में प्रयुक्त भाषा असंदिग्ध, सरल और स्पष्ट होती है, तो उस उपबंध को उसी प्रकार से पढ़ा जाना अपेक्षित होता है, जैसाकि वह है और उसमें कुछ भी जोड़ा नहीं जाना चाहिए । इस संदर्भ में **गिरीश कुमार** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले (पैरा 9) को निर्दिष्ट किया गया । **पाम डेवलप्मेंट (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[2] वाले मामले (पैरा 19 और 20) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी कानून के अधीन कोई उपबंध ऐसी रीति में नहीं बढ़ा जा सकता कि उस कानून के अधीन प्रदत्त शक्तियां वापस ले ली जाएं । इसलिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम

---

[1] (2019) 6 एस. सी. सी. 647.

[2] (2019) 8 एस. सी. सी. 112.

10 के उपबंध को उसकी स्पष्ट और सरल भाषा में पढ़ा जाना चाहिए और उसको ऐसी रीति में नहीं पढ़ा जा सकता जिससे न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार वापस लिया जा सके । यदि पति को सामान्य रूप से प्रत्येक मामले में आवश्यक पक्ष बनाए जाने के लिए निर्देशित किया जाता है, तो इसका अर्थ विधान निर्माण होगा, जबकि किसी विशिष्ट कोटि (अर्थात् पति/पुत्र) को सामान्य रूप से प्रत्येक मामले में पक्ष बनाए जाने को कानूनी उपबंध द्वारा ही उपबंधित किया जा सकता है । इसका अर्थ 'प्रभुत्व के सिद्धांत की स्थिरीकृत विधि' से भी समझौता करना होगा यदि इस प्रकार का कोई सामान्य निर्देश जारी किया जाता है या यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि ऐसी कार्यवाहियों में पति आवश्यक पक्ष है और उसको प्रतिवादी के रूप में संयोजित किया जाना चाहिए या जोड़ा जाना चाहिए और/या वाद को पोषणीय बनाए रखे जाने के प्रयोजनार्थ उसके विरुद्ध निष्कासन के अनुतोष की भी ईप्सा करते हुए दावा किया जाना चाहिए । अन्य शब्दों में, यदि पति आवश्यक पक्ष नहीं है, तो उसके विरुद्ध निष्कासन के अनुतोष का दावा कैसे किया जा सकता है ? इसका उत्तर स्पष्टत: नकारात्मक में होगा ।

27. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **कबिता गंभीर** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया । उस मामले में संयुक्त हिंदू संपत्ति का प्रश्न उठाया गया था । वर्तमान मामले में दोनों ही निचले न्यायालयों द्वारा समान निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है कि प्रतिवादी वादी के पक्षकथन का खंडन कर पाने में विफल रहा है या अपनी इस दलील/प्रकथन को साबित कर पाने में विफल रहा है कि वादी प्रश्नगत मकान का अनन्य स्वामी नहीं है । **कबिता गंभीर** (उपरोक्त) वाले मामले में वादी का यह पक्षकथन नहीं था कि उन्होंने अपने पुत्र के साथ हुए समाधान, जिसके अंतर्गत वह सपरिवार उनकी संपत्ति के कब्जे में था, को समाप्त कर दिया है । वर्तमान मामले में, पुत्र से अपनी पत्नी, जो प्रतिवादी है और बच्चों के साथ मकान से निकल जाने के लिए कहा गया और इसलिए उसकी अनुज्ञप्ति रद्द हो गई और उसने वास्तव में मकान को छोड़ भी दिया और किसी अन्य स्थान पर निवास करने लगा ।

इसके अतिरिक्त, यद्यपि इस बात पर बिल्कुल भी चर्चा नहीं की गई है कि **कबिता गंभीर** (उपरोक्त) वाले मामले में यह निर्णय लागू क्यों नहीं होता या विभेद्य क्यों नहीं है और यह निर्णय **बी. पी. अचाला आनंद** बनाम **एस. अप्पी रेड्डी और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 11 फरवरी, 2005 को दिए गए निर्णय पर दृढ़तापूर्वक आधारित है, जब कि 2005 का अधिनियम तारीख 26 अक्तूबर, 2006 को प्रवृत्त हुआ । अतः, उक्त निर्णय वर्तमान मामले में उठाए गए विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर दिए जाने के प्रयोजनार्थ आधार नहीं हो सकता । इन सब बातों के बाद भी, मैं माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को दृष्टि में रखते हुए इस निर्णय का अवलंब लेने के लिए आनत नहीं हूं ।

28. प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **बी. पी. अचाला आनंद** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया है, फिर भी ऊपर वर्णित कारणोंवश इस निर्णय का अवलंब नहीं लिया जा सकता, चूंकि उस समय बिंदु पर 2005 का अधिनियम प्रवृत्त नहीं था और इसलिए इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ उपलब्ध भी नहीं था ।

29. जहां तक **नीतू राणा** (उपरोक्त) और **निशांत शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए निर्णय का संबंध है, यह उल्लेख किया जाना पर्याप्त होगा कि वे निर्णय दांडिक कार्यवाहियों से उद्भूत होने वाली कार्यवाहियों में दिए गए थे और उनके अपने पृथक् तथ्य हैं ।

30. मैं **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को दृष्टि में रखते हुए, माननीय उच्च न्यायालयों द्वारा पारित अन्य निर्णयों का अवलंब लेने के लिए आनत नहीं हूं । तथापि, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि अधिकांश निर्णयों में पुत्रवधू के पक्ष में सहानुभूति और भावुकता दर्शित करते हुए या तो यह मताभिव्यक्ति करते हुए कि यह साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि वादग्रस्त संपत्ति 'साझी गृहस्थी है या नहीं' और

---

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 313.

पुत्रवधू के लिए पुत्र की एक पक्ष के रूप में उपस्थिति आवश्यक है, निर्वचन किए गए हैं और यह भी उपबंधित किया गया है कि जब तक वादी और प्रतिवादी, अन्य शब्दों में सास-ससुर और पुत्रवधू के मध्य मुकदमेबाजी लंबित है, माता-पिता द्वारा आवास उपलब्ध कराया जाना चाहिए जब तक कि पुत्रवधू के विरुद्ध कोई आदेश पारित नहीं कर दिया जाता । मेरे विचार में, यह भावुकता अपेक्षित नहीं है और भ्रमपूर्ण है । इस संबंध में **बिमलाबेन अजीतभाई पटेल** बनाम **वत्सलाबेन अशोकभाई पटेल और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है, जिसमें 2005 की अधिनियम की उपबंधों और 1956 के हिंदू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम के उपबंधों पर भी पैरा 21, 22, 27, 28, 48 और 49 में विचार किया गया है और जिनको नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "21. विवाह के अस्तित्व के दौरान विवाहित पत्नी का भरणपोषण पति का उत्तरदायित्व होता है । यह एक व्यक्तिगत बाध्यता है । पुत्रवधू के भरणपोषण की बाध्यता केवल तब उद्भूत होती, जब पति की मृत्यु हो जाए । इस प्रकार की बाध्यता केवल उन संपत्तियों, जिनका पति हिस्सेदार है, से पूरी की जा सकती है, अन्यथा नहीं । उक्त उपबंध का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ पति का संपत्ति में हिस्सा होना चाहिए । यदि संपत्ति सास के नाम में है तो वह संपत्ति न तो कुर्की की विषयवस्तु हो सकती है और न ही पति के जीवन के दौरान उसकी पत्नी के भरणपोषण के लिए उसका व्यक्तिगत दायित्व, जिसे उस संपत्ति से प्रवर्तित किए जाने के लिए निर्देशित किया जा सकता है ।
>
> 22. हमारे समक्ष **सोनलबेन** (पत्नी) की तरफ से पूर्णतया प्रतिविरोधात्मक विवाद्यक उठाए गए हैं । यह सुस्थापित है कि हमारे समक्ष प्रकट राज्य के मामले पर वास्तविक मामले के रूप में विचार किया जाएगा । यह संपत्ति के स्वामी का दायित्व नहीं है कि वह इस बात को साबित करे कि संपत्ति उसकी स्वअर्जित

[1] (2008) 4 एस. सी. सी. 649.

संपत्ति है और इस बात को साबित करने का दायित्व उस पक्ष पर होगा जो इसके विपरीत अभिवाक् कर्ता है । **सोनलबेन** पति से भरणपोषण की हकदार हो सकती है । भरणपोषण का आदेश स्थिरीकृत विधिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए पारित किया जाना चाहिए, डिक्री, यदि कोई हो, को पति के विरुद्ध निष्पादित किया जाना चाहिए और उसके लिए केवल उसी की संपत्तियां कुर्क की जा सकती हैं, किंतु उसकी सास की नहीं ।

27. घरेलू हिंसा अधिनियम पत्नी के पक्ष में उच्चतर अधिकार के लिए उपबंधित करता है । वह इस अधिनियम के अंतर्गत न केवल भरणपोषण का अधिकार अर्जित करती है बल्कि वह इस अधिनियम के अधीन निवास का अधिकार भी अर्जित करती है । निवास का अधिकार एक उच्चतर अधिकार है । यह अधिकार विधायन के अनुसार संयुक्त संपत्तियों, जिनमें पति का हिस्सा है, को भी विस्तारित होता है ।

28. इस न्यायालय ने **एस. आर. बत्तरा** बनाम **तरुणा बत्तरा** [(2007) 3 एस. सी. सी. 169] वाले मामले में घरेलू हिंसा अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन करते हुए अभिनिर्धारित किया कि पत्नी भी अपनी सास से संबंधित संपत्ति में निवास की अधिकार का दावा नहीं कर सकती –

> '17. भारत में ऐसी कोई विधि नहीं है, जैसे कि ब्रिटिश मैट्रीमोनियल होम्स एक्ट, 1967 और किसी भी मामले में वे अधिकार जो विधि के अधीन उपलब्ध होंगे, केवल पति के विरुद्ध उपलब्ध हो सकते हैं और ससुर या साध के विरुद्ध नहीं ।
>
> 18. इस मामले में प्रश्नगत मकान **श्रीमती तरुणा बत्तरा** की सास से संबंधित है और यह मकान पति अनिल बत्तरा से संबंधित नहीं है, श्रीमती तरुणा बत्तरा उक्त मकान में निवास के किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकती ।
>
> 19. अपीलार्थी संख्या 2, जो **श्रीमती तरुणा बत्तरा** की

सास है, ने अभिकथित किया है कि उसने मकान अर्जित करने के लिए ऋण लिया था और यह मकान संयुक्त परिवार की संपत्ति नहीं है । हम कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं पाते ।'

48. जैसाकि सुविख्यात है, सहानुभूति या भावुकता का न्यायालय की विनिश्चय करने की प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए । सहानुभूति या भावुकता का अवलंब केवल ऐसे व्यक्ति के पक्ष में लिया जा सकता है, जो इसका हकदार हो । इस पर इस प्रकार से विचार नहीं किया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अन्य पक्ष को दीवानी या बुराई के परिणामों को बर्दाश्त करना पड़े ।

49. हम यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि यह दलील किस आधार पर प्रस्तुत की गई है । यदि हम विद्वान् काउंसेल की दलील को स्वीकार करते हैं, तो इसका अर्थ यह होगा कि हम एक बुर्जुग युगल को जेल भेज दें या उनको उनकी मूल्यवान संपत्ति के विधिक अधिकार से वंचित कर दें और/या उनसे ऐसी बाध्यताओं को पूर्ण करने के लिए कहें, जो कानूनन उनकी बाध्यताएं नहीं हैं । हमारे विचार में इस प्रकार का कोई भी निर्देश तृतीय प्रत्यर्थी के आचरण को दृष्टि में रखते हुए पारित नहीं किया जाना चाहिए । उसने अपने सास-ससुर के विरुद्ध न केवल अनेक मामले, जिनमें से कुछ मामले उसकी अनुपस्थिति के कारण खारिज हो चुके हैं या उसके द्वारा वापस लिए जा चुके हैं, फाइल किए बल्कि उनकी जमानत के रद्दकरण के लिए नितांत असत्य आधारों पर आवेदन भी फाइल कर रही है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

31. ऊपर उल्लिखित विनिश्चय में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यह संपत्ति के स्वामी का दायित्व नहीं है कि वह इस बात को साबित करे कि संपत्ति की उसकी स्व-अर्जित संपत्ति है और इसका भार उस व्यक्ति पर होगा जो इसके

विपरीत अभिवाक् करता है । अतः, विधि इस बाबत स्पष्ट है कि इन कारणोंवश यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि 2005 के अधिनियम के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए पुत्रवधू के निष्कासन के लिए फाइल किया गया वाद पुत्र के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना पोषणीय नहीं होगा । जैसाकि ऊपर उद्धृत किया गया है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 28 में **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया है । वास्तव में इस मामले में पुत्रवधू के आचरण पर विचार करते हुए उसके विरुद्ध अन्य आदेश पारित किए जाने के अलावा लागत भी अधिरोपित की गई थी ।

32. मैं उपरोक्त चर्चा को दृष्टि में रखते हुए यह मताभिव्यक्ति करता हूं कि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि 2005 के अधिनियम के आधार पर दी गई दलीलें उस समय उपलब्ध नहीं थीं जब **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय पारित किया गया था, पूर्णरूपेण भ्रमपूर्ण है । वास्तव में, मैं इस दलील को भ्रमित करने वाली, अभिलेखों के विरुद्ध और माननीय उच्चतम न्यायालय की गरिमा के विरुद्ध पाता हूं, विशेष रूप से तब जब माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निर्णय का अवलंब **बिमलाबेन अजीतभाई पटेल** (उपरोक्त) वाले मामले में अनुमोदन के साथ लिया गया ।

33. वादी-प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **सुमिता दीदी संधू** (उपरोक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, जिसमें **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया था, का अवलंब लिया, जिसके पैरा 17 और पैरा 18 के सुसंगत उद्धरण को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "17. तथापि, वादी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित करते हुए इस सीमा तक नहीं गई कि पुत्रवधू को उसके सास-ससुर से संबंधित मकान में रहने का कोई अधिकार नहीं है, चाहे वह मकान उसका वैवाहिक घर ही क्यों न हो । उनका निवेदन यह था कि पूर्वोक्त निर्णय में

यह निर्णीत नहीं किया गया था कि क्या प्रश्नगत मकान वैवाहिक घर था और यदि ऐसा था, तो क्या पुत्रवधू को उक्त मकान में रहने का अधिकार था या नहीं । उन्होंने अभिवाक् किया कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस पहलू पर प्राधिकृत निर्णयज विधि की अनुपस्थिति में **तरुणा बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय अभिभावी होगा । मुझे आशंका है और उच्चतम न्यायालय के निर्णय को उस रीति में पढ़ा जाना कठिन है, जिस रीति में वादी के विद्वान् काउंसेल उसको पढ़ना चाहते हैं । इस मामले का विनिश्चयानुपात स्पष्ट है, अर्थात्, पुत्रवधू को उस मकान में निवास करने का विधिक अधिकार नहीं है, जो उसके सास-ससुर से संबंधित हो ।

18. जो विधिक स्थिति उत्पन्न होती है, यह है कि पति की यह विधिक और नैतिक बाध्यता है कि वह अपनी पत्नी को निवास उपलब्ध कराए । इसलिए, पत्नी पति के विरुद्ध निवास के अधिकार का दावा कर सकती है । यदि प्रश्नगत मकान, जहां वह विवाह के पश्चात् निवास कर रही थी, उसके पति से संबंधित है, तो उस मकान को निश्चित रूप से उसका वैवाहिक घर प्रतीत किया जाएगा । इसी प्रकार से, यदि प्रश्नगत मकान किसी हिंदू अविभाजित परिवार से संबंधित है जिसमें उसका पति एक सहदायिक है, तो उसको भी वैवाहिक घर माना जा सकता है । तथापि, जहां मकान सास-ससुर से संबंधित है, जिसमें पति का कोई अधिकार, स्वत्व या हित नहीं है और उन्होंने अपने पुत्र को पुत्रवधू के साथ उक्त मकान मे निवास करने की अनुज्ञा प्रदान की है, तो यह पुत्रवधू को अनुज्ञा के साथ कब्जा दिया जाना होगा । किंतु इससे उसको उक्त मकान में निवास करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं होगा । तब क्या स्थिति होगी, यदि पति और पत्नी के मध्य कोई विवाद न हो, किंतु पति के माता-पिता उनके पुत्र और पुत्र की पत्नी को उक्त मकान में कतिपय कारणोंवश निवास करने देना नहीं चाहते । निश्चित रूप से उनका पुत्र, जो केवल एक अनुज्ञा प्राप्त अनुज्ञप्तिधारी है और मकान में अपनी पत्नी के साथ निवास कर रहा है, उस मकान में

किसी विधिक अधिकार का दावा नहीं कर सकता । यदि पुत्र अपने माता-पिता के विरुद्ध किसी ऐसे मकान में, जो उसके माता-पिता से संबंधित है, किसी ऐसे अधिकार का दावा नहीं कर सकता, तो उसकी पत्नी भी निश्चित रूप से ऐसे किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकती । यह वह रीति है जिसमें मैं पूर्वोक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के सिद्धांत का अध्ययन करता हूं । इन सब बातों के बाद भी, वर्तमान मामले में इस बाबत गंभीर विवाद है कि क्या वादग्रस्त संपत्ति को वैवाहिक घर कहा जा सकता है । वादी द्वारा वादपत्र में यह कहीं पर भी अभिकथित नहीं किया गया है कि वह वादग्रस्त संपत्ति में प्रतिवादियों के साथ अपने विवाह के पहले से निवास कर रही थी । अभिवचनों के आधार पर यह प्रथमदृष्ट्या प्रतीत होता है कि वह अपने विवाह की तारीख से वर्ष 1996 तक वादग्रस्त संपत्ति में निवास करती रही और तत्पश्चात् वह मई, 1996 में डिफेंस कालोनी स्थानांतरित हो गई (वादपत्र का पैरा 5) । वह मार्च, 1999 में वादग्रस्त संपत्ति में वापस आई और वादपत्र को पढ़े जाने पर यह प्रतीत होता है कि वह उस मकान में वर्ष 2004 तक निवास करती रही, जब उसको अभिकथित रूप से उसके जीवन और शारीरिक अंगों को किसी प्रकार के नुकसान से बचने के लिए उस मकान को छोड़ देने के लिए विवश किया गया । उसने तारीख 19 जनवरी, 2006 को अभिलिखित अपने कथन में इस बात को स्वीकार किया है कि उसने दिसंबर, 1999 से नवंबर, 2000 तक की अवधि के दौरान मुंबई में एक फ्लैट पट्टे पर लिया था । उक्त फ्लैट का पट्टा उसके नाम में था और वह उस फ्लैट में तीन-चार महा तक रही । उसका पति भी उसके साथ रहता था । उसके द्वारा इस बाबत कोई शिकायत नहीं की गई है कि उसको वर्ष 2004 में अपना वैवाहिक घर छोड़ देने के लिए विवश किया गया था । वादी ने यह भी स्वीकार किया है कि वह तारीख 10 अक्तूबर, 2004 को अपने वैवाहिक घर में पुन: प्रविष्ट हुई । यद्यपि उसने यह अभिकथित किया है कि उसने प्रथम तल अपनी तालियों से खोला था, फिर भी यह अचंभित करने वाली बात है कि उसको रात के अंधेरे में अर्थात्

रात्रि 2.30 बजे घर में पुन: प्रवेश के लिए आना पड़ा था, चूंकि उसने अपने प्रवेश के तथाकथित समय को स्वीकार किया है । इससे प्रतिवादियों के अभिवचनों को प्रथमदृष्ट्या कुछ बल मिलता है कि उसने (वादी ने) प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के मकान में विषम समय में बलपूर्वक प्रवेश किया ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

34. वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने **कन्हैया लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में, जिसमें **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया है, में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 16 फरवरी, 2017 को दिए गए निर्णय का अवलंब लिया, जिसके पैरा 15, 16, 17 और 18 को नीचे उद्धृत किया गया है :-

"15. प्रत्यर्थी/वादी वादग्रस्त संपत्ति का मूल आबंटी है । उसने मात्र प्रेम और अनुरागवश अपने पुत्र और पुत्रवधू को अपने मकान के प्रथम तल पर निवास करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी है, का यह अर्थ नहीं है कि वह अपने अवज्ञाकारी पुत्र या पुत्रवधू, जो उसके विरूद्ध निरंतर उपद्रव करते रहते हैं, को आश्रय और निवास उपलब्ध कराने की किसी विधिक बाध्यता के अधीन है । प्रेम, आदर और विश्वास के पारस्परिक संबंध के समाप्त हो जाने के पश्चात् और संबंधों के इस प्रक्रम पर पहुंच जाने के पश्चात् कि ससुर के विरुद्ध दांडिक मामला फाइल कर दिया गया है और वर्तमान में वह (ससुर) उनके कारण परेशानी बर्दाश्त कर रहा है, अत: अब वह (ससुर) अपने पुत्र और पुत्रवधू को निवास उपलब्ध कराने की किसी विधिक बाध्यता के अधीन नहीं है ।

16. भारत में विवाहित स्त्रियों के अधिकारों पर विचार करने वाले कुछ कानून, चाहे वह 1955 का हिंदू विवाह अधिनियम हो, 1956 का हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम हो, 1956 का हिंदू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम हो या 2005 का घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम हो, विवाहित महिला को उसके पति के माता-पिता के विरुद्ध निवास के अधिकार को सम्मिलित करते हुए

भरणपोषण का कोई अधिकार प्रदान नहीं करते । विधि किसी विवाहित महिला को उसके सास-ससुर के विरुद्ध भरणपोषण का दावा करने की अनुज्ञा केवल उस स्थिति में प्रदान करती है, जो 1956 के हिंदू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 19 के अधीन आच्छादित हो । अत: अपीलार्थी की ओर से दी गई यह दलील कि सिविल न्यायालय को 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम और 2005 के घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं है, अस्वीकृत किए जाने योग्य है ।

17. यह स्थिरीकृत विधि है कि उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में निचले न्यायालयों द्वारा तथ्यों के आधार पर निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों को अपास्त नहीं कर सकती, जब तक कि विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं होता । जहां कहीं भी विधि के प्रश्न पर कोई स्पष्ट परिदृश्य उपस्थित होता है , अपीलार्थी यह दावा नहीं कर सकता कि उस मामले में विधि के सारभूत प्रश्न अंतर्वलित हैं ।

18. मैं निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से पूर्णतया सहमत हूं, चूंकि अब विधि **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से स्थिरीकृत हो चुकी है । प्रत्यर्थी/वादी अपनी हैसियत भूखंड के आबंटी की होने के कारण उस भूखंड पर आबंटी की हैसियत से निवास कर रहा है, पुत्र और पुत्रवधू अर्थात् अपीलार्थियों के रूप में उनकी हैसियत एक अनुज्ञप्तिधारी से अधिक नहीं हो सकती और उनकी वह हैसियत भी समाप्त हो गई, जब उनको वादग्रस्त संपत्ति को रिक्त करने के प्रयोजनार्थ तामील किया गया । चूंकि वादग्रस्त संपत्ति स्वअर्जित संपत्ति है, इसलिए प्रत्यर्थी/वादी **एस. आर. बत्तरा** बनाम **तरुणा बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में उल्लिखित विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपने पुत्र-अपीलार्थी संख्या 1 और पुत्रवधू-अपीलार्थी संख्या 2 के भरणपोषण की बाध्यता के अधीन नहीं है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

35. समान परिस्थितियों के अधीन, जहां प्रतिवादी के पुत्र, पति में मकान को छोड़ दिया था और कहीं अन्यत्र निवास करना आरंभ कर दिया था, को ध्यान में रखते हुए मेरे द्वारा **रिचा गौड़** बनाम **कमलकिशोर गौड़**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी को उसकी हैसियत अनुज्ञप्तिधारी की होने के कारण उसकी अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के पश्चात् मकान में निवास का कोई अधिकार नहीं है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्रश्नगत मकान को साझी गृहस्थी के रूप में प्रतीत नहीं किया जा सकता । **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) और **विमलाबेन अजीतभाई पटेल** (उपरोक्त) वाले मामलों, जिनको ऊपर विस्तारपूर्वक उद्धृत किया गया है, का अवलंब लिया गया । 2014 की प्रथम अपील संख्या 76 (**श्रीमती सुनीता** बनाम **श्रीमती रामवती और एक अन्य**) वाले मामले में तारीख 29 सितंबर, 2015 को माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित विनिश्चय का भी अवलंब लिया गया । **रिचा गौड़** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 12, 13, 14, 15 और 16 को नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "12. **श्रीमती सुनीता** (उपरोक्त) वाले मामले के सुसंगत पैराओं को उद्धृत किया जाना लाभदायक होगा, जिन्हें नीचे उद्धृत किया है –
>
> > अपीलार्थी वादी, जिसने अपने पुत्र और पुत्रवधू के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश का वाद फाइल किया है, की पुत्रवधू है । प्रतिवादी संख्या 1, जो वादी का पुत्र है, वाद में उपस्थित नहीं हुआ और इसलिए वाद में प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध एकपक्षीय रूप से कार्रवाई की गई । प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किया गया दावा यह था कि वह विवाह के तुरंत पश्चात् इस मकान में आई थी और इसलिए उसको इस मकान में निवास का अधिकार प्राप्त है । इसलिए वादी उसको उसके वैवाहिक घर से निष्कासित नहीं कर सकता ।
>
> .....

---

[1] 2020 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 667.

इसके अतिरिक्त इस न्यायालय द्वारा इस बाबत निष्कर्ष अभिलिखित किए जाने को दृष्टि में रखते हुए कि प्रतिवादी संख्या 4 मात्र एक अनुज्ञप्तिधारी था और उसको मूल स्वामी अर्थात् वादी द्वारा अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के पश्चात् प्रश्नगत मकान में निवास करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है ।

विवाद्यक संख्या 1 पर निकाले गए इस निष्कर्ष को दी गई चुनौती को इस कारणवश स्वीकार नहीं किया जा सकता कि एक महिला को विवाह के पश्चात् उसके पति के घर में निवास का अधिकार होता है । उसको उसके ससुर और सास के मकान पर कोई अधिकार नहीं होता । विवादित संपत्ति उसके ससुर की स्वअर्जित संपत्ति थी और वादी ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उक्त मकान के संबंध में उत्तराधिकार प्राप्त कर लिया था । प्रतिवादी संख्या 2 के दुष्कर्मों के कारण सास और पुत्रवधू के मध्य संबंध तनावपूर्ण हो गए थे और इसलिए वादी ने प्रतिवादियों से अपने मकान से चले जाने को कहा । वादी 70 वर्ष की महिला हैं और वह प्रतिवादियों, जो उसके पुत्र और पुत्रवधू हैं, के हाथों शारीरिक या मानसिक प्रपीड़न बर्दाश्त नहीं कर सकती ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

13. अत: न केवल जो **एस. आर. बत्तरा** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, बल्कि वह भी जो **विमलाबेन अजीतभाई पटेल** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए **उमादेवी** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, यदि प्रतिवादी-अपीलार्थी को कोई अनुतोष प्रदान किया जाता है, तो यह प्रतिवादी, जिसने बुजुर्ग वादी और परिवार के अन्य सदस्य के विरुद्ध दांडिक मामले को सम्मिलित करते हुए अनेक मामले पहले ही फाइल किए थे, के पक्ष में गलती से दर्शित की गई सहानुभूति का मामला होगा ।

14. वर्तमान मामले में निर्विवाद रूप से प्रश्नगत मकान के

पिता, जो वादी है, से संबंधित है और उन्होंने अपने पुत्र को अपनी संपत्ति से बेदखल कर दिया था और स्वीकृतत: पुत्र (प्रतिवादी का पति) उस मकान में निवास नहीं कर रहा है ।

15. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि वह मकान, जो स्वीकृतत: वादी से संबंधित है, को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए साझा मकान प्रतीत नहीं किया जा सकता और इस प्रकार वादी की हैसियत, जैसाकि विचारण न्यायालय द्वारा न्यायत: अभिनिर्धारित किया गया है, मात्र लाइसेंसधारी की होगी, जिसकी अनुज्ञप्ति को मूल स्वामी अर्थात् वादी द्वारा समाप्त कर दिया गया । अत:, उसको मूल स्वामी अर्थात् वादी द्वारा अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के पश्चात् प्रश्नगत मकान में निवास का अधिकार नहीं है ।

16. **सुनीता** (उपरोक्त) वाले मामले में वादी 70 वर्ष की वृद्ध महिला है और वर्तमान मामले में भी वादी की आयु वर्ष 2017 में जब वाद फाइल किया गया था, लगभग 68 वर्ष थी और इसलिए उक्त निर्णय का विनिश्चयानुपात पूरे बल के साथ लागू होता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

36. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **वैशाली अभिमन्यु जोशी** बनाम **नाना साहेब गोपाल जोशी**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को अनिच्छापूर्वक यह दलील देते हुए निर्दिष्ट किया कि निवास के लिए पुत्रवधू द्वारा फाइल किए गए खंडन दावे पर उसके विरुद्ध संस्थित निष्कासन के दावे में विचार किया जा सकता है ।

37. मैंने इस निर्णय का परिशीलन किया । मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि यह निर्णय भिन्न विवाद्यक पर आधारित है और वर्तमान मामले में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न से संबंधित नहीं है । उस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था, यह था कि क्या प्रत्यर्थी (पुत्रवधू के ससुर) द्वारा 1887

---

[1] (2017) 14 एस. सी. सी. 373.

पर उसकी देखभाल करने के लिए जाता है, फिर भी उसके क्रियाकलाप को नकारात्मक क्रियाकलाप के रूप में दर्शित किया जा रहा है । प्रतिवादी-अपीलार्थी का यह पक्षकथन बिल्कुल भी नहीं है कि वह उनकी देखभाल कर रही है । वास्तव में वादपत्र में उल्लिखित पक्षकथन इसके सर्वथा विपरीत है । इसलिए, इन परिस्थितियों में यह अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण है कि माता-पिता अपने पुत्र के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा करने के लिए विवश हैं, जबकि वास्तविक अनुतोष पुत्रवधू के विरुद्ध ईप्सित है, जिसने अपने सास-ससुर का जीवन दयनीय बना दिया है ।

41. अतः, पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए वर्तमान मामले में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है, जो यह है कि साझी गृहस्थी की परिभाषा, जैसाकि 2005 के अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन उपबंधित है, को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी-पुत्रवधू के पुत्र, जिसके साथ वह विवाह के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति के प्रथम तल पर निवास कर रही थी, के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री की ईप्सा किए बिना निष्कासित किया जा सकता है ।

42. ऊपर की गई मताभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

राजीव कुमार और एक अन्य

बनाम

प्रहलाद और अन्य

(2015 की एकल न्यायपीठ द्वितीय अपील संख्या 421)

तारीख 17 जनवरी, 2019

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) [एक दिसंबर, 2004 को यथा विद्यमान] – आदेश 41, नियम 27, 28 और 29 – अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य का पेश किया जाना, अतिरिक्त साक्ष्य लेने की रीति और उन विषय बिंदुओं को परिभाषित और लेखबद्ध किया जाना, जिन तक साक्ष्य को सीमित रखा जाना है – यदि अपील न्यायालय अपील के प्रक्रम पर किसी भी पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को अभिलेख पर मंजूर करता है, तो उसके द्वारा नियम 28 और 29 में विहित प्रक्रिया का पालन किया जाना अनिवार्य होगा – यदि अपील न्यायालय द्वारा नियम 28 और 29 के अधीन यथाविहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता तो अतिरिक्त साक्ष्य के आधार पर पारित डिक्री और आदेश अपास्त किए जाने योग्य होंगे ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि अधीनस्थ प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम अपील के विचारण के दौरान प्रतिवादी पक्ष की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रार्थनापत्र अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किया गया, जिसे स्वीकार किया गया और सुसंगत दस्तावेज, जो कमिश्नर द्वारा प्रस्तुत की गई मौका मुआयना की रिपोर्ट है, को अभिलेख पर लिया गया और तद्नुसार उक्त साक्ष्य का विवेचन करते हुए निर्णय और डिक्री पारित की । अपीलार्थी के अधिवक्ता का पक्षकथन यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रस्तुत किया गया प्रार्थनापत्र

स्वीकार किए जाने के पश्चात् आदेश 41, नियम 28 और 29 का अनुपालन सुनिश्चित किया जाना आवश्यक था । उनका पक्षकथन यह भी है कि जिस मौका मुआयना की कमिश्नर रिपोर्ट को अभिलेख पर लिया गया, उसे साक्ष्य में प्रदर्शित कराया जाना चाहिए था और उक्त दस्तावेज का प्रमाणीकरण आवश्यक था, किन्तु प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा उक्त दस्तावेज के प्रमाणीकरण न कराए जाने के बावजूद आक्षेपित निर्णय पारित किया गया, जो किसी भी रूप में विधिसम्मत नहीं माना जा सकता । अतः वर्तमान द्वितीय अपील में प्रस्तावित विधि के सारभूत प्रश्नों की रोशनी में इस अपील को विचारार्थ ग्रहण किए जाने का निवेदन किया गया । द्वितीय अपील को विचारार्थ ग्रहण किया गया और ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही दोनों पक्षों को सुना गया । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपरोक्त कानूनी प्रावधानों की रोशनी में यह स्पष्ट है कि जहां अपीली न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रस्तुत किया गया प्रार्थनापत्र स्वीकार कर किसी दस्तावेज की विश्वसनीयता के क्रम में या तो अपीली न्यायालय द्वारा स्वयं साक्ष्य लिया जा सकता है अथवा प्रकरण को अधीनस्थ न्यायालय को प्रतिप्रेक्षित किया जाकर सम्बन्धित दस्तावेज पर साक्ष्य लेकर पुनः निर्णय पारित किए जाने हेतु निर्देशित किया जा सकता है । किन्तु वर्तमान मामले में अधीनस्थ अपीली न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत मौका कमिश्नर को अभिलेख पर अवश्य लिया गया है, किन्तु इस क्रम में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 28 और 29 के प्रावधानों के अधीन प्रक्रिया अपनाए बिना तथा उक्त दस्तावेज के प्रमाणीकरण के बिना अपीलाधीन निर्णय पारित किया गया है । उक्त विवेचन की रोशनी में अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत वर्तमान द्वितीय अपील स्वीकार की जाकर अधीनस्थ अपीली न्यायालय द्वारा पारित अपीलाधीन निर्णय और डिक्री तारीख 12 अगस्त, 2015 को अपास्त किया जाता है तथा यह प्रकरण पुनः अधीनस्थ अपीली न्यायालय को इस द्वितीय अपील के अधीन बनाए गए सारभूत प्रश्नों की रोशनी में प्रतिप्रेक्षित किया जाकर निर्देशित किया

जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 28 और 29 की पालना किए जाने के पश्चात् दोनों पक्षों को नियमानुसार सुना जाकर पुनः नए सिरे से निर्णय/आदेश पारित किया जाए । (पैरा 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की एकल न्यायपीठ द्वितीय अपील संख्या 421.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री विनीत मेहता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विपीन गुप्ता और ईशान कुमावत

निर्णय

अधीनस्थ विचारण न्यायालय, अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) संख्या 3, भरतपुर द्वारा 1999 के सिविल वाद संख्या 161 में पारित निर्णय और डिक्री तारीख 17 मई, 2006 (जिसके अधीन वादी का वाद प्रतिवादी के विरुद्ध सव्यय डिक्री किया गया), के विरुद्ध प्रथम अपीलीय न्यायालय अपर जिला न्यायाधीश संख्या 2, भरतपुर द्वारा 2006 की सिविल अपील संख्या 45 में पारित निर्णय और डिक्री तारीख 12 अगस्त, 2015 (जिसके अधीन अधीनस्थ विचारण न्यायालय द्वारा पारित अपीलाधीन निर्णय और डिक्री को अपास्त किया गया), के विरुद्ध वादीगण/अपीलार्थीगण की ओर से यह द्वितीय अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. द्वितीय अपील को विचारार्थ ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर दोनों पक्षों को सुना गया ।

3. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया कि विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा पारित अपीलाधीन निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम अपील के विचारण के दौरान

प्रतिवादी पक्ष की ओर से प्रस्तुत प्रार्थनापत्र सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाकर सुसंगत दस्तावेज मौका कमिश्नर की रिपोर्ट को अभिलेख पर लिया गया और तद्नुसार अधीनस्थ अपीली न्यायालय ने उपलब्ध साक्ष्य का विवेचन करते हुए अपीलाधीन निर्णय और डिक्री पारित की, जो विधिसम्मत नहीं है । उनका यह भी पक्षकथन रहा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रस्तुत किया गया प्रार्थनापत्र स्वीकार किए जाने के पश्चात् आदेश 41, नियम 28 और 29 की पालना किया जाना आवश्यक है । उनका यह भी कथन है कि जिस मौका कमिश्नर रिपोर्ट को अभिलेख पर लिया गया, उसे साक्ष्य में प्रदर्शित करवाया जाकर उक्त प्रलेख का प्रमाणीकरण आवश्यक था, किन्तु अपीली न्यायालय द्वारा दस्तावेज के प्रमाणीकरण न होने के बावजूद अपीलाधीन निर्णय पारित किया गया, जो किसी भी रूप में विधिसम्मत नहीं माना जा सकता । अतः अपील में प्रस्तावित विधि के सारभूत प्रश्नों की रोशनी में अपील को विचारार्थ ग्रहण किए जाने का निवेदन किया गया ।

4. उक्त तर्कों का विरोध करते हुए योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी/वादी की ओर से निवेदन किया गया कि विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित अपीलाधीन निर्णय और डिक्री पूर्ण रूप से विधिसम्मत हैं, जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अतः वर्तमान द्वितीय अपील को इसी प्रक्रम पर खारिज किए जाने का निवेदन किया गया ।

5. अपील में उठाए गए कानूनी मुद्दों एवं मौखिक रूप से प्रस्तुत तर्कों को मद्देनजर अपीलाधीन निर्णय में किए गए विवेचन एवं निकाले गए निष्कर्ष की रोशनी में इस अपील में विधि के निम्नांकित सारभूत प्रश्न बनना पाए जाते है :-

1. क्या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए दस्तावेज उक्त उपबंध में अधिकथित शर्तों के विपरीत थे ?

2. क्या न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों को अभिलेख पर

स्वीकार करने के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन कार्रवाई करने के लिए बाध्य था ?

3. क्या आयुक्त की रिपोर्ट, जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन अभिलेख पर स्वीकार किया गया है, को साक्ष्य में मंजूर किए बिना पढ़ा जा सकता था ?

6. अपील विचारार्थ ग्रहण की जाती है ।

7. दोनों पक्षों के योग्य अधिवक्ताओं द्वारा निवेदन किया गया कि चूंकि यह अपील प्रक्रियात्मक कानूनी प्रावधानों के तहत ग्रहण की गई है, अतः इसी प्रक्रम पर सारभूत प्रश्नों की रोशनी में इस द्वितीय अपील का गुणागुण पर निस्तारण किए जाने की प्रार्थना की गई ।

8. विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय के अपीलाधीन निर्णय और डिक्री का अवलोकन करने पर प्रकट होता है कि उक्त निर्णय के पैरा संख्या 19 में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रस्तुत किया गया प्रार्थनापत्र स्वीकार किए जाने तथा कमिश्नर की मौका रिपोर्ट को सुसंगत दस्तावेज होना मानते हुए अभिलेख पर लिए जाने के साथ-साथ उक्त मौका रिपोर्ट को सही माने जाने का अंकन किया गया है । इसी क्रम में विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा पृष्ठ संख्या 20 पर यह अंकन भी किया गया है कि :-

> "... मामले में अस्थायी निषेधाज्ञा के प्रार्थनापत्र में मौका कमिश्नर की नियुक्ति होना तथा मौके की स्थिति यथावत् रखा जाना अधीनस्थ न्यायालय की पत्रावली से प्रकट होता है । मौका कमिश्नर की रिपोर्ट तारीख 20 नवंबर, 1989 और नक्शे से भी यह स्पष्ट होता है कि वादीगण ने मौका नक्शा प्रदर्श-1 भी गलत रूप से बनवाया है तथा उसमें प्रतिवादी जगदीश और भागचन्द का मकान नहीं दिखलाया है और दावे के हदूद अर्वा भी गलत दिखते गए हैं ।.."

9. इस प्रकार उक्त अंकन से यह प्रकट होता है कि विद्वान् अधीनस्थ अपीली न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के प्रार्थनापत्र को स्वीकार करते हुए और मौका कमिश्नर की

रिपोर्ट को अभिलेख पर स्वीकार करते हुए, उक्त मौका कमिश्नर की रिपोर्ट में अंकित तथ्यों की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय में वादी की ओर से प्रस्तुत की गई साक्ष्य को विश्वसनीय नहीं माना और अपीलाधीन निर्णय पारित किया गया है । किन्तु स्वीकृत रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के प्रार्थनापत्र को स्वीकार किए जाने एवं सम्बन्धित दस्तावेज को अभिलेख पर स्वीकार किए जाने के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 28 और 29 के तहत प्रक्रियात्मक कानूनी प्रावधानों की पालना नहीं की गई । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 28 और 29 निम्न प्रकार है :-

"**आदेश 41, नियम 28.** अतिरिक्त साक्ष्य लेने की रीति -

जहां कहीं अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने की अनुज्ञा दी जाती है, वहां अपील न्यायालय ऐसा साक्ष्य स्वयं ले सकेगा या उस न्यायालय को, जिसकी डिक्री की अपील की गई है या किसी अन्य अधीनस्थ न्यायालय को ऐसा साक्ष्य लेने के लिए और उसके ले लिए जाने पर अपील न्यायालय को उसे भेजने के लिए निर्देश दे सकेगा ।

आदेश 41, नियम 20. विषय-बिंदुओं को परिभाषित और लेखबद्ध किया जाना -

जहां अतिरिक्त साक्ष्य लेने का निदेश दिया जाता है या अनुज्ञा दी जाती है, वहां अपील न्यायालय उन विषय-बिंदुओं को विनिर्दिष्ट करेगा जिन तक साक्ष्य को सीमित रखना है और अपनी कार्रवाइयों में उन विषय-बिंदुओं को लेखबद्ध करेगा, जो इस प्रकार विनिर्दिष्ट किए गए हैं ।"

10. उपरोक्त कानूनी प्रावधानों की रोशनी में यह स्पष्ट है कि जहां अपीली न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन प्रस्तुत किया गया प्रार्थनापत्र स्वीकार कर किसी दस्तावेज की विश्वसनीयता के क्रम में या तो अपीली न्यायालय द्वारा स्वयं साक्ष्य लिया जा सकता है अथवा प्रकरण को अधीनस्थ न्यायालय को प्रतिप्रेक्षित किया जाकर सम्बन्धित दस्तावेज पर साक्ष्य लेकर पुनः

निर्णय पारित किए जाने हेतु निर्देशित किया जा सकता है । किन्तु वर्तमान मामले में अधीनस्थ अपीली न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत मौका कमिश्नर को अभिलेख पर अवश्य लिया गया है, किन्तु इस क्रम में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 28 और 29 के प्रावधानों के अधीन प्रक्रिया अपनाए बिना तथा उक्त दस्तावेज के प्रमाणीकरण के बिना अपीलाधीन निर्णय पारित किया गया है ।

11. उक्त विवेचन की रोशनी में अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत वर्तमान द्वितीय अपील स्वीकार की जाकर अधीनस्थ अपीली न्यायालय द्वारा पारित अपीलाधीन निर्णय और डिक्री तारीख 12 अगस्त, 2015 को अपास्त किया जाता है तथा यह प्रकरण पुनः अधीनस्थ अपीली न्यायालय को इस द्वितीय अपील के अधीन बनाए गए सारभूत प्रश्नों की रोशनी में प्रतिप्रेक्षित किया जाकर निर्देशित किया जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 28 और 29 की पालना किए जाने के पश्चात् दोनों पक्षों को नियमानुसार सुने जाकर पुनः नए सिरे से निर्णय/आदेश पारित किया जाए ।

12. दोनों पक्षकारान तारीख 13 फरवरी, 2019 को विद्वान् अपीलीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहें । अधीनस्थ न्यायालय का अभिलेख अविलम्ब वापस भेजा जाए ।

13. तद्नुसार स्थगन प्रार्थनापत्र भी निस्तारित किया जाता है ।

14. यह आदेश/निर्णय आज तारीख 17 जनवरी, 2019 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(1) के अधीन भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या-1, तारीख 2 जनवरी, 1999 एवं राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के अधीन हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा में लिखाया गया ।

अपील मंजूर की गई ।

महीं./शु.

राम प्रकाश चौधरी

बनाम

राजेन्द्र कुमार चौधरी और एक अन्य

(2017 की एकल पीठ सिविल पुनरीक्षण याचिका संख्या 124)

तारीख 21 जनवरी, 2019

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 8 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7, नियम 11] – जहां पक्षकारों के मध्य विवाद साझेदारी के खातों के हिसाब-किताब से सम्बन्धित हो या साझेदारी-विलेख के माध्यस्थम् खंड के अनुसार अन्य कोई अनुतोष चाहा गया हो, वहां माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 8 के प्रावधान अवश्य लागू होंगे – किन्तु यदि बैंक को भेजे गए पत्र द्वारा कैश-क्रेडिट खाते का ऑपरेशन पुन: चालू किए जाने का अनुतोष चाहा गया, तो मामला सिविल न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत आता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि पक्षों के मध्य यह विवाद उद्भूत हुआ कि प्रतिवादी संख्या 2 और वादी के मध्य निष्पादित साझेदारी-विलेख के अंतर्गत विवाद का निस्तारण मध्यस्थ (आर्बीट्रेटर) द्वारा ही किया जा सकता है, न कि सिविल न्यायालय द्वारा । उनका कथन यह है कि उक्त वाद के अंतर्गत याची/प्रतिवादी द्वारा बैंक/प्रतिवादी संख्या 1 को पत्र लिखा गया जिसके आधार पर बैंक द्वारा कैश-क्रेडिट खाते (नकद-उधार खाता) का क्रियान्वयन पुनः चालू किए जाने के साथ-साथ वादी को फर्म के नाम से कार्य करने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न किए जाने व झूठी शिकायतें न किए जाने से स्थायी निषेधाज्ञा द्वारा निषिद्ध किए जाने का अनुतोष चाहा गया । याची/प्रतिवादी संख्या 1 का पक्षकथन है कि ऐसी स्थिति में, पक्षकारों के मध्य निष्पादित साक्षेदारी विलेख के आर्बीट्रेशन खंड के प्रकाश में वादी द्वारा प्रस्तुत वाद

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 8 के साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के प्रावधानों के अन्तर्गत चलने योग्य नहीं है । किन्तु वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी/प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा बैंक को भेजे गए पत्र के अंतर्गत कैश-क्रेडिट खाते का क्रियान्वयन पुन: चालू कराए जाने का अनुतोष चाहा गया है, जो सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है । किन्तु विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय ने उक्त तथ्यों को नजरअन्दाज करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया, जो विधिसम्मत नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है । बैंक द्वारा कैश-क्रेडिट खाते का क्रियान्वयन याची/प्रतिवादी संख्या 2 के पत्र के आधार पर रोका गया या अपने स्तर पर, उक्त रोक को हटाए जाने के बाबत वादी द्वारा जो अनुतोष चाहा गया, उसको प्रदान करने की अधिकारिता सिविल न्यायालय को ही है और इस अनुतोष के संबंध में साझेदारी-विलेख में समाविष्ट माध्यस्थम् खंड आकर्षित नहीं होता । परिणामस्वरूप इस पुनरीक्षण याचिका को विचारार्थ ग्रहण किए जाने का निवेदन किया गया । याची/प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से यह पुनरीक्षण याचिका विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, क्रम संख्या 19, जयपुर महानगर, (सांगानेर) द्वारा दीवानी वाद संख्या 25/2017 राजेन्द्र कुमार चौधरी बनाम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया और अन्य वाले मामले में पारित आदेश तारीख 5 मई, 2017, जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 सपठित धारा 151 और माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 8 के अधीन प्रतिवादी/याची की ओर से प्रस्तुत प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया गया । इस आदेश से व्यथित होकर प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका फाइल की गई । पुनरीक्षण याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उक्त तथ्यों के मद्देनजर इस न्यायालय के विनम्र मत में प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा कैश-क्रेडिट खाते का ऑपरेशन चाहे याची/प्रतिवादी संख्या 2 के पत्र के आधार पर रोका गया हो या अपने स्तर पर, उक्त रोक को हटाए जाने के बाबत वादी द्वारा जो अनुतोष चाहा गया है, उसकी रोक को हटाए जाने के बाबत वादी द्वारा जो अनुतोष चाहा गया

है, उसकी रोशनी में इस न्यायालय के विनम्र मत में साक्षेदारी विलेख के आर्बीट्रेशन-खंड आकर्षित नहीं होता और याची द्वारा प्रस्तुत उद्धरणों के तथ्यों से मेल नहीं खाते हैं । जहां तक वादी द्वारा प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के क्रम में चाही गई स्थायी निषेधाज्ञा के क्रम में प्रस्तुत किए गए तर्कों का प्रश्न है, स्थायी निषेधाज्ञा के तहत चाहे गए अनुतोष की प्रकृति की रोशनी में यह अनुतोष साझेदारी के विवाद व साझेदारी-विलेख के पैरा संख्या 13 से सम्बन्धित होना प्रकट नहीं होते । इस न्यायालय के विनम्र मत में जहां पक्षकारों के मध्य विवाद साझेदारी-विलेख के तहत खातों के हिसाब-किताब से सम्बन्धित हो या अन्य कोई अनुतोष चाहा गया हो, तो वहां धारा 8, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के प्रावधान अवश्य लागू होते हैं । किन्तु वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी/प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा बैंक को भेजे गए पत्र के तहत कैश-क्रेडिट खाते के ऑपरेशन को वापस चालू किए जाने का अनुतोष चाहा गया है, जो सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है । ऐसी स्थिति में याची-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत न्यायिक दृष्टान्तों में प्रतिपादित सिद्धान्त प्रकरण के तथ्यों की भिन्नता के कारण याची के लिए सहायक सिद्ध नहीं होते । जबकि दूसरी ओर विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत न्यायिक विनिश्चयों में प्रतिपादित सिद्धान्तों की रोशनी में, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण प्रतीत नहीं होता तथा उक्त आदेश में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । (पैरा 9, 10 और 11, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] (2003) 6 एस. सी. सी. 503 :
हिंदुस्तान पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड बनाम **पिंकसिटी मिडवे पेट्रोलियम** ; 3

[2016] ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 5359 :
भक्ता और अन्य बनाम **नैना एस. भक्ता और अन्य** ; 3

[2006] ए. आई. आर. 2006 राजस्थान 56 :
महेश कुमार बनाम **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम, जोधपुर** ; 4

[2003] (2003) 5 एस. सी. सी. 531 :
सुकन्या होल्डिंग्स (प्राइवेट लिमिटेड) बनाम **एच. पांड्या और एक अन्य** । 4

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2017 की एकल पीठ सिविल पुनरीक्षण याचिका संख्या 124.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण याचिका ।

याची की ओर से श्री विकास शर्मा

प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से श्री आर. के. डागा

प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से सुश्री रानी भंडारी

निर्णय

याची/प्रतिवादी संख्या 2 राम प्रकाश चौधरी की ओर से यह रिवीजन याचिका विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, क्रम संख्या 19, जयपुर महानगर, (सांगानेर) द्वारा दीवानी वाद संख्या 25/2017 उनवानी राजेन्द्र कुमार चौधरी बनाम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया व अन्य में पारित आदेश दिनांक 5 मई, 2017 जिसके तहत प्रतिवादी/याची की ओर से प्रस्तुत प्रार्थनापत्र अन्तर्गत आदेश 7, नियम 11 सपठित धारा 141 सिविल प्रक्रिया संहिता और धारा 8, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम को अस्वीकार कर दिया गया, से व्यथित होकर प्रस्तुत की गई है ।

2. पुनरीक्षण याचिका को ग्रहणार्थ प्रक्रम पर सुना गया ।

3. योग्य अधिवक्ता याची/प्रतिवादी की ओर से निवेदन किया गया कि वादी द्वारा अधीनस्थ न्यायालय में प्रस्तुत वाद में उल्लिखित अभिवचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पक्षकारान अर्थात् प्रतिवादी संख्या 2 तथा वादी के मध्य निष्पादित साझेदारी-विलेख के तहत ऐसे विवाद का

निस्तारण मध्यस्थ (आर्बीट्रेटर) द्वारा ही किया जा सकता है, न कि सिविल न्यायालय द्वारा । उनका कथन यह रहा कि उक्त वाद के तहत मूल रूप से याची/प्रतिवादी द्वारा बैंक/प्रतिवादी संख्या 1 को लिखे गए पत्र के आधार पर बैंक द्वारा कैश-क्रेडिट खाते (नकद-उधार खाता) के ऑपरेशन को रोका गया है, जिसे पुनः चालू किए जाने के साथ-साथ वादी को फर्म के नाम से कार्य करने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न करने व झूठी शिकायतें नहीं करने के क्रम में स्थायी निषेधाज्ञा से पाबन्द किए जाने का भी अनुतोष चाहा गया है । ऐसी स्थिति में, पक्षकारों के मध्य निष्पादित हुई साझेदारी-विलेख के आर्बीट्रेशन खंड की रोशनी में वादी द्वारा प्रस्तुत वाद धारा 8, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के साथ-साथ आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अन्तर्गत चलने योग्य नहीं है । किन्तु विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय ने उक्त तथ्यों को नजरअन्दाज करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है । परिणामस्वरूप इस पुनरीक्षण याचिका को विचारार्थ ग्रहण किए जाने का निवेदन किया गया । अपने तर्कों के समर्थन में उनकी ओर से न्यायिक विनिश्चयों अनंतथेश **भक्ता और अन्य** बनाम **नैना एस. भक्ता और अन्य**[1], **हिंदुस्तान पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **पिंकसिटी मिडवे पेट्रोलियम**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया गया ।

4. योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी/वादी और योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा उक्त कथनों का विरोध करते हुए प्रकट किया गया कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मामले के समस्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विस्तृत विवेचन करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, जो पूर्ण रूप से विधिसम्मत एवं अपने आप में स्पष्ट हैं तथा जिसमें हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है । अतः इस पुनरीक्षण याचिका को खारिज किए जाने का निवेदन किया गया । अपने समर्थन में उनकी ओर से न्यायिक विनिश्चयों **सुकन्या होल्डिंग्स (प्राइवेट लिमिटेड)** बनाम **एच. पांड्या और**

---

[1] ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 5359.

[2] (2003) 6 एस. सी. सी. 503.

एक अन्य[1] और **महेश कुमार** बनाम **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम, जोधपुर**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया गया ।

5. सुना गया और पत्रावली का अवलोकन किया गया तथा प्रस्तुत न्यायिक दृष्टांतों का ससम्मान अध्ययन किया गया ।

6. अधीनस्थ न्यायालय की पत्रावली का अवलोकन करने पर प्रकट होता है कि याची/प्रतिवादी संख्या 2 तथा प्रत्यर्थी/वादी के मध्य एक साझेदारी-विलेख निष्पादित हुआ था और उक्त साझेदारी-विलेख के पैरा संख्या 13 के तहत दोनों पक्षों के मध्य व्यवसायिक मामलों के तहत उत्पन्न हुए विवाद का निपटारा माध्यस्थम् (आर्बीट्रेटर) द्वारा किया जाना तय हुआ ।

7. जहां तक याची/प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उठाए गए तर्कों का प्रश्न है, विद्वान् अधिवक्ता याची का मूल रूप से तर्क रहा कि प्रतिवादी/याची द्वारा प्रत्यर्थी/बैंक को लिखे गए पत्र के आधार पर बैंक द्वारा कैश-क्रेडिट खाते के ऑपरेशन को रोका गया, जिसे पुनः चालू किए जाने की आदेशात्मक निषेधाज्ञा वादी द्वारा अनुतोष के रूप में चाही गई, किन्तु साझेदारी-विलेख के आर्बीट्रेशन खंड के मद्देनजर उक्त वाद की सुनवाई का क्षेत्राधिकार सिविल न्यायालय को नहीं है ।

8. इस क्रम में याची/प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से प्रस्तुत न्यायिक विनिश्चयों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का सादर अध्ययन किया गया । उक्त उद्धरणों की तथ्यात्मक स्थिति की रोशनी में वर्तमान प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति का अवलोकन किया जाए, तो यह प्रकट होता है कि वादी ने मूल रूप से प्रतिवादी संख्या 2 अर्थात् याची द्वारा प्रत्यर्थी/बैंक को लिखे गए पत्र के आधार पर कैश-क्रेडिट खाते का ऑपरेशन रोके जाने के क्रम में उक्त खाते के ऑपरेशन को पुनः चालू कराए जाने की आज्ञात्मक निषेधाज्ञा तथा याची/प्रतिवादी के क्रम में मात्र यह स्थायी निषेधाज्ञा चाही गई कि वह प्रत्यर्थी/बैंक को झूठी शिकायतें न

---

[1] (2003) 5 एस. सी. सी. 531.

[2] ए. आई. आर. 2006 राजस्थान 56.

करें तथा वादी को फर्म के नाम से कार्य करने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करें ।

9. उक्त तथ्यों के मद्देनजर इस न्यायालय के विनम्र मत में प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा कैश-क्रेडिट खाते का ऑपरेशन चाहे याची/प्रतिवादी संख्या 2 के पत्र के आधार पर रोका गया हो या अपने स्तर पर, उक्त रोक को हटाए जाने की बाबत वादी द्वारा जो अनुतोष चाहा गया है, उसकी रोक को हटाए जाने के बाबत वादी द्वारा जो अनुतोष चाहा गया है, उसकी रोशनी में इस न्यायालय के विनम्र मत में साझेदारी-विलेख के आर्बीट्रेशन-खंड आकर्षित नहीं होते और याची द्वारा प्रस्तुत उद्धरणों के तथ्यों से मेल नहीं खाते हैं ।

10. जहां तक वादी द्वारा प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के क्रम में चाही गई स्थायी निषेधाज्ञा के क्रम में प्रस्तुत किए गए तर्कों का प्रश्न है, स्थायी निषेधाज्ञा के तहत चाहे गए अनुतोष की प्रकृति की रोशनी में यह अनुतोष साझेदारी के विवाद व साझेदारी-विलेख के पैरा संख्या 13 से सम्बन्धित होना प्रकट नहीं होते ।

11. इस न्यायालय के विनम्र मत में जहां पक्षकारों के मध्य विवाद साझेदारी-विलेख के तहत खातों के हिसाब-किताब से सम्बन्धित हो या अन्य कोई अनुतोष चाहा गया हो, तो वहां धारा 8, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के प्रावधान अवश्य लागू होते हैं । किन्तु वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी/प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा बैंक को भेजे गए पत्र के तहत कैश-क्रेडिट खाते के ऑपरेशन को वापस चालू किए जाने का अनुतोष चाहा गया है, जो सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है । ऐसी स्थिति में याची-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत न्यायिक दृष्टान्तों में प्रतिपादित सिद्धान्त प्रकरण के तथ्यों की भिन्नता के कारण याची के लिए सहायक सिद्ध नहीं होते । जबकि दूसरी ओर विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत न्यायिक विनिश्चयों में प्रतिपादित सिद्धान्तों की रोशनी में, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण प्रतीत नहीं होता तथा उक्त आदेश में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

12. उक्त विवेचन के परिणामस्वरूप यह याचिका ग्रहणार्थ स्वीकार किए जाने योग्य न होने से ग्रहणार्थ प्रक्रम पर ही खारिज की जाती है । तद्नुसार स्थगन प्रार्थनापत्र भी खारिज किया जाता है ।

13. इस आदेश की एक प्रति के साथ अधीनस्थ न्यायालय का अभिलेख अविलम्ब वापस भेजा जाए ।

14. यह आदेश/निर्णय आज तारीख 21 जनवरी, 2019 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(1) के तहत भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या 1, तारीख 2 जनवरी, 1999 और राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के तहत हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा में लिखाया गया ।

याचिका खारिज की गई ।

महीं./शु.

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2014

(2014 का अधिनियम संख्यांक 17)

[9 मई, 2014]

किसी लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी अभिकथन पर या जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग अथवा जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के प्रकटन से संबंधित शिकायतों को स्वीकार करने के लिए कोई तंत्र स्थापित करने तथा ऐसे प्रकटन की जांच करने या जांच कराने तथा ऐसी शिकायत करने वाले व्यक्ति के उत्पीड़न से पर्याप्त सुरक्षा का तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बासठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सूचना प्रदाता संरक्षण अधिनियम, 2014 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और ऐसे किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रतिनिर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रतिनिर्देश है ।

2. इस अधिनियम के उपबंधों का विशेष संरक्षा ग्रुप को लागू न होना - इस अधिनियम के उपबंध संघ के सशस्त्र बलों को, जो विशेष

संरक्षा ग्रुप अधिनियम, 1988 (1988 का 34) के अधीन गठित विशेष संरक्षा ग्रुप है, लागू नहीं होंगे ।

3. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "केन्द्रीय सतर्कता आयोग" से केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित आयोग अभिप्रेत है;

(ख) "सक्षम प्राधिकारी" से निम्नलिखित अभिप्रेत है, –

(i) संघ के मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, प्रधानमंत्री;

(ii) मंत्री से भिन्न संसद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य राज्य सभा का सदस्य है तो राज्य सभा का सभापति या यदि ऐसा सदस्य लोक सभा का सदस्य है तो लोक सभा का अध्यक्ष;

(iii) किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में, मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का मुख्यमंत्री;

(iv) किसी राज्य या संघ राज्य-क्षेत्र के किसी मंत्री से भिन्न, उस विधान परिषद् या विधान सभा के किसी सदस्य के संबंध में, यथास्थिति, यदि ऐसा सदस्य विधान परिषद् का सदस्य है तो विधान परिषद् का सभापति या यदि ऐसा सदस्य विधान सभा का सदस्य है तो विधान सभा का अध्यक्ष;

(v) निम्नलिखित के संबंध में उच्च न्यायालय, –

(अ) कोई न्यायाधीश (उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के सिवाय) जिसके अंतर्गत स्वयं या व्यक्तियों के किसी निकाय के किसी सदस्य के रूप में किन्हीं न्यायनिर्णायक कृत्यों का

निर्वहन करने के लिए विधि द्वारा सशक्त किया गया कोई व्यक्ति भी है; या

(आ) न्याय प्रशासन से संबंधित किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए किसी न्यायालय द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत ऐसे न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया कोई समापक, रिसीवर या कमिश्नर भी है; या

(इ) कोई मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति, जिसे कोई वाद या विषय किसी न्यायालय द्वारा या किसी सक्षम लोक प्राधिकारी द्वारा विनिश्चय या रिपोर्ट के लिए निर्दिष्ट किया गया है;

(vi) निम्नलिखित के संबंध में, केंद्रीय सतर्कता आयोग या कोई अन्य प्राधिकरण, जिसे केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, संसद् सदस्यों और संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण

करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या संसद् या राज्य विधान-मंडल के निर्वाचनों के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और संसद् सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार से या किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी केंद्रीय अधिनियम द्वारा स्थापित या केंद्रीय सरकार द्वारा स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का

सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है जो केंद्रीय सरकार या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(vii) निम्नलिखित के संबंध में, राज्य सतर्कता आयोग, यदि कोई है, या राज्य सरकार का कोई अधिकारी या कोई अन्य प्राधिकारी, जिसे राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे –

(अ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो केंद्रीय सरकार की सेवा या वेतन में या किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए फीस या कमीशन के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा पारिश्रमिक पर या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी सोसाइटी या स्थानीय प्राधिकारी या किसी निगम या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या किसी निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति (मंत्रियों, राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(आ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण

करता है, जिसके आधार पर उसे निर्वाचक नामावली तैयार, प्रकाशित, बनाए रखने या पुनरीक्षित करने या राज्य में नगरपालिका या पंचायतों या अन्य स्थानीय निकाय के संबंध में किसी निर्वाचन या किसी निर्वाचन के भाग का संचालन करने के लिए सशक्त किया गया है; या

(इ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर उसे राज्य सरकार के कार्यकलापों के संबंध में किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है या उससे अपेक्षा की गई है (मंत्रियों और राज्य की विधान परिषद् या विधान सभा के सदस्यों के सिवाय); या

(ई) ऐसा कोई व्यक्ति, जो राज्य सरकार से या किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही या प्राप्त करने वाली कृषि, उद्योग, व्यवसाय या बैंककारी में लगी किसी रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी का या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में यथापरिभाषित राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन या उससे सहायता प्राप्त किसी प्राधिकरण या निकाय या किसी सरकारी कंपनी का अध्यक्ष, सचिव या अन्य पदधारी है; या

(उ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी राज्य सेवा आयोग या बोर्ड का, चाहे जो भी नाम हो, अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा उस आयोग या बोर्ड की ओर से किसी परीक्षा का संचालन या कोई चयन करने के लिए नियुक्त की गई किसी चयन समिति का सदस्य है; या

(ऊ) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित या राज्य सरकार द्वारा

स्थापित या उसके नियंत्रणाधीन या वित्तपोषित किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या उसके शासी निकाय का सदस्य, आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, रीडर, प्राध्यापक या कोई अन्य अध्यापक या कर्मचारी, चाहे जो भी पदनाम हो, है या ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सेवाओं का ऐसे विश्वविद्यालय या किसी ऐसे लोक प्राधिकरण द्वारा परीक्षाएं आयोजित या संचालित करने के संबंध में उपभोग किया गया है; या

(ए) ऐसा कोई व्यक्ति, जो ऐसी किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्था जिसे किसी भी रीति में स्थापित किया गया है, का कोई पदधारी या कर्मचारी है, जो राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही है या जिसने प्राप्त की है;

(viii) संविधान के अनुच्छेद 33 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों या व्यक्तियों के संबंध में, ऐसा कोई प्राधिकारी या ऐसे प्राधिकारी, जिसकी उनके संबंध में अधिकारिता है, जिसे, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे;

(ग) "शिकायतकर्ता" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के अधीन प्रकटन के संबंध में कोई शिकायत करता है;

(घ) "प्रकटन" से, –

(i) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 45) के अधीन किसी अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(ii) जानबूझकर शक्ति के दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार के दुरुपयोग के संबंध में, जिसके कारण सरकार को प्रमाण्य सदोष होती है या लोक सेवक या किसी तृतीय

पक्षकार को प्रमाण्य सदोष अभिलाभ उद्भूत होता है, कोई शिकायत अभिप्रेत है;

(iii) किसी लोक सेवक द्वारा किसी दांडिक अपराध को करने के प्रयत्न या अपराध किए जाने के संबंध में कोई शिकायत अभिप्रेत है,

जो लोक सेवक के विरुद्ध लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल द्वारा या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा की जाती है और जिसमें धारा 4 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट लोक हित प्रकटन सम्मिलित है;

(ङ) "इलैक्ट्रानिक मेल" या "इलैक्ट्रानिक मेल संदेश" से किसी कम्प्यूटर, कम्प्यूटर प्रणाली, कम्प्यूटर संसाधन या संचार यंत्र पर, कोई संदेश या सृजित या पारेषित या प्राप्त सूचना अभिप्रेत है, जिसमें पाठ, आकृति, श्रव्य, दृश्य तथा किसी अन्य इलेक्ट्रानिक अभिलेख के ऐसे संलग्नक सम्मिलित हैं, जो संदेश के साथ प्रेषित किए जाएं;

(च) "सरकारी कंपनी" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में निर्दिष्ट कोई कंपनी अभिप्रेत है;

(छ) "अधिसूचना" से, यथास्थिति, भारत के राजपत्र या किसी राज्य के राजपत्र में प्रकाशित कोई अधिसूचना अभिप्रेत है;

(ज) "लोक प्राधिकारी" से सक्षम प्राधिकारी की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाला कोई प्राधिकारी, निकाय या संस्था अभिप्रेत है;

(झ) "लोक सेवक" का वही अर्थ होगा, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 2 के खंड (ग) में है, किंतु इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश नहीं होगा;

(ञ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ट) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ।

अध्याय 2

लोक हित प्रकटन

4. लोक हित प्रकटन की आवश्यकता – (1) शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) के उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई लोक सेवक या किसी गैर-सरकारी संगठन सहित कोई अन्य व्यक्ति सक्षम प्राधिकारी के समक्ष कोई लोक हित प्रकटन कर सकेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी प्रकटन को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए लोक हित प्रकटन माना जाएगा और उसे सक्षम प्राधिकारी के समक्ष किया जाएगा तथा प्रकटन करने वाली शिकायत को सक्षम प्राधिकारी की ओर से ऐसे प्राधिकारी द्वारा, जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, प्राप्त किया जाएगा ।

(3) प्रत्येक प्रकटन सद्भावपूर्वक किया जाएगा और प्रकटन करने वाला व्यक्ति एक व्यक्तिगत घोषणा करते हुए यह कथन करेगा कि युक्तियुक्त रूप से उसका यह विश्वास है कि उसके द्वारा प्रकट की गई जानकारी और उसमें अन्तर्विष्ट अभिकथन सारभूत रूप से सत्य है ।

(4) प्रत्येक प्रकटन ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जिसे विहित किया जाए, लिखित में या इलेक्ट्रानिक मेल या इलेक्ट्रानिक मेल संदेश द्वारा किया जाएगा और उसमें सभी विशिष्टियां होंगी तथा उसके साथ समर्थनकारी दस्तावेज या अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संलग्न होगी ।

(5) सक्षम प्राधिकारी, यदि उचित समझता है तो प्रकटन करने वाले व्यक्ति से और अधिक जानकारी या विशिष्टियां मंगा सकेगा ।

(6) यदि प्रकटन में लोक हित प्रकटन करने वाले शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान उपदर्शित नहीं की गई है या शिकायतकर्ता लोक सेवक की पहचान गलत या मिथ्या पाई जाती है तब सक्षम प्राधिकारी द्वारा लोक हित अथवा प्रकटन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी ।

अध्याय 3

लोक हित प्रकटन के संबंध में जांच

5. लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी की

शक्तियां और कृत्य – (1) धारा 4 के अधीन किसी लोक हित प्रकटन के प्राप्त होने पर सक्षम प्राधिकारी इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, –

(क) शिकायतकर्ता या लोक सेवक से यह अभिनिश्चित करेगा कि क्या वह, वही व्यक्ति या लोक सेवक है या नहीं जिसने प्रकटन किया है;

(ख) शिकायतकर्ता की पहचान को तब तक छिपाएगा जब तक कि स्वयं शिकायतकर्ता ने अपनी पहचान किसी अन्य कार्यालय या प्राधिकारी को लोक हित प्रकटन करते समय या अपनी शिकायत में या अन्यथा प्रकटन न की हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी शिकायत प्राप्त करने और शिकायतकर्ता की पहचान छिपाने के पश्चात् सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करने के लिए कि प्रकटन का अन्वेषण करने के लिए आगे कार्यवाही करने का कोई आधार है या नहीं, सावधानीपूर्वक जांच, ऐसी रीति में और ऐसे समय के भीतर करेगा जो विहित किया जाए ।

(3) यदि सक्षम प्राधिकारी की, या तो सावधानीपूर्वक जांच के परिणामस्वरूप या किसी जांच के बिना प्रकटन के आधार पर ही यह राय है कि प्रकटन का अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है तो वह संगठन या प्राधिकरण के विभागाध्यक्ष संबंधित बोर्ड या निगम या संबंधित कार्यालय से ऐसे समय के भीतर, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगेगा ।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट की गई टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट को मांगते समय सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट नहीं करेगा और संबंधित संगठन या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को यह निदेश करेगा कि वह शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान प्रकट न करे :

परंतु यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि लोक प्रकट के आधार पर उपधारा (3) के अधीन उनसे टिप्पणी या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट मांगने के प्रयोजन के लिए संगठन या प्राधिकरण, बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता

या लोक सेवक की पहचान प्रकट करना आवश्यक हो गया है तो सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पूर्व लिखित सहमति से संगठन या प्राधिकरण या बोर्ड या संबंधित निगम या संबंधित कार्यालय के ऐसे विभागाध्यक्ष को शिकायतकर्ता या लोक सेवक की पहचान उक्त प्रयोजन के लिए प्रकट कर सकेगा :

परंतु यह और कि यदि शिकायतकर्ता या लोक सेवक, विभागाध्यक्ष को अपना नाम प्रकट किए जाने से सहमत नहीं होता है तो उस मामले में, यथास्थिति, शिकायतकर्ता या लोक सेवक अपनी शिकायत के समर्थन में सभी दस्तावेजी साक्ष्य सक्षम प्राधिकारी को उपलब्ध कराएगा ।

(5) संगठन या संबंधित कार्यालय का विभागाध्यक्ष ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक की, जिसने प्रकटन किया है, पहचान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं करेगा ।

(6) यदि जांच करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि -

(क) प्रकटन में अंतर्विष्ट तथ्य और अभिकथन तुच्छ या तंग करने वाले हैं; या

(ख) जांच के संबंध में कार्यवाही करने के पर्याप्त आधार नहीं हैं,

तो वह मामले को बंद कर देगा ।

(7) उपधारा (3) में निर्दिष्ट टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट के प्राप्त होने के पश्चात् यदि सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि ऐसी टिप्पणियों या स्पष्टीकरणों या रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि या तो जानबूझकर शक्ति का दुरुपयोग या जानबूझकर विवेकाधिकार का दुरुपयोग किया गया है या भ्रष्टाचार के अभिकथन सिद्ध हो गए हैं तो वह लोक प्राधिकारी को निम्नलिखित एक या अधिक उपाय करने की सिफारिश करेगा, अर्थात् –

(i) संबंधित लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करना;

(ii) यथास्थिति, भ्रष्ट आचरण या पद के दुरुपयोग या विवेकाधिकार के दुरुपयोग के परिणामस्वरूप सरकार को हुई हानि के प्रतितोष के लिए समुचित प्रशासनिक कदम उठाना;

(iii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यदि आवश्यक हो, तो तत्समय प्रवृत्त सुसंगत विधियों के अधीन दांडिक कार्यवाहियों को आरंभ करने के लिए समुचित प्राधिकारी या अभिकरण को सिफारिश करेगा;

(iv) दोष निवारक उपाय करने की सिफारिश करेगा;

(v) खंड (i) से (iv) के अधीन न आने वाला ऐसा कोई अन्य उपाय जो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो ।

(8) वह लोक प्राधिकारी, जिसे उपधारा (7) के अधीन कोई सिफारिश की जाती है, उस सिफारिश की प्राप्ति के तीन मास के भीतर या तीन मास से अनधिक की ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी द्वारा किए गए अनुरोध पर अनुज्ञात करे, उस सिफारिश पर कोई विनिश्चय करेगा :

परंतु यदि लोक प्राधिकारी सक्षम प्राधिकारी की सिफारिश से सहमत नहीं होता है तो वह ऐसी असहमति के कारणों को अभिलिखित करेगा ।

(9) सक्षम प्राधिकारी, जांच करने के पश्चात्, शिकायतकर्ता या लोक सेवक को शिकायत पर की गई कार्रवाई और उसके अंतिम निष्कर्ष के बारे में सूचित करेगा :

परंतु ऐसे किसी मामले में, जहां सक्षम प्राधिकारी जांच करने के पश्चात् मामले को बंद करने का विनिश्चय करता है, वहां वह मामले को बंद करने का आदेश पारित करने से पूर्व, यदि शिकायतकर्ता ऐसी वांछा करे तो शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा ।

6. सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच न किए जाने वाले विषय – (1) यदि किसी प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषय या उठाए गए किसी विवाद्यक का अवधारण प्रकटन में विनिर्दिष्ट विषयों या उठाए गए विवाद्यक पर विचार करने के पश्चात् किसी ऐसे न्यायालय या अधिकरण द्वारा किया गया है, जो कि ऐसे विवाद्यक का अवधारण करने के लिए प्राधिकृत है, तब सक्षम प्राधिकारी प्रकटन के संबंध में उस सीमा तक विचार नहीं करेगा जिस सीमा तक ऐसे प्रकटन में ऐसे विवाद्यक पर पुनः विचार करने की मांग की गई हो ।

(2) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन को ग्रहण नहीं करेगा या उसके संबंध में जांच नहीं करेगा –

(क) जिसकी बाबत लोक सेवक (जांच) अधिनियम, 1850 (1850 का 37) के अधीन औपचारिक और लोक जांच किए जाने का आदेश किया गया है; या

(ख) ऐसे किसी विषय की बाबत जिसे जांच आयोग अधिनियम, 1952 (1952 का 60) के अधीन जांच के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी ऐसे किसी प्रकटन का अन्वेषण नहीं करेगा जिसमें ऐसा अभिकथन अंतर्ग्रस्त हो जिसके संबंध में शिकायत करने की तारीख से सात वर्ष के पश्चात् कार्रवाई किए जाने का अभिकथन किया गया है ।

(4) इस अधिनियम में किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि सक्षम प्राधिकारी को इस अधिनियम के अधीन किसी कर्मचारी द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए यदि कोई सद्भाविक कार्रवाई या सद्भाविक विवेकाधिकार (जिसके अंतर्गत प्रशासनिक और कानूनी विवेकाधिकार भी है) का प्रयोग किया है उसके विरुद्ध जांच करने के लिए सशक्त किया गया है ।

अध्याय 4

सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां

7. सक्षम प्राधिकारी की शक्तियां – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सक्षम प्राधिकारी को प्रदत्त की गई शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सक्षम प्राधिकारी, जांच के प्रयोजन के लिए, किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति को जो कि उनकी राय में जानकारी देने या जांच के लिए सुसंगत दस्तावेजों को प्रस्तुत करने या जांच में सहायता के लिए समर्थ है तो वह उसे उक्त प्रयोजन के लिए ऐसी जानकारी देने या ऐसे दस्तावेज, प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा, जो आवश्यक हो ।

(2) निम्नलिखित विषयों की बाबत किसी ऐसी जांच (जिसके

अन्तर्गत आरम्भिक जांच भी है) के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी को वे सभी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय की होती हैं, अर्थात् :-

(क) किसी साक्षी को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कोई कमीशन निकालना;

(च) ऐसे अन्य विषय, जो विहित किए जाएं ।

(3) सक्षम प्राधिकारी, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा और सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत तथा भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी ।

(4) धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सरकारी या किसी भी लोक सेवक द्वारा अभिप्राप्त या उसको दी गई जानकारी की गोपनीयता बनाए रखने या अन्य निर्बन्धन की किसी बाध्यता का दावा, चाहे शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अधिरोपित हो, सक्षम प्राधिकारी या लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति या अभिकरण के समक्ष कार्यवाहियों में किसी लोक सेवक द्वारा नहीं किया जाएगा और सरकारी या कोई भी लोक सेवक किसी ऐसी जांच के संबंध में दस्तावेज पेश करने या साक्ष्य देने की बाबत ऐसे किसी विशेषाधिकार का हकदार

नहीं होगा जो किसी अधिनियमिति द्वारा या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों द्वारा अनुज्ञात है :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, सिविल न्यायालय की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित करने के लिए यथा आवश्यक कदम उठाएगा कि शिकायत करने वाले व्यक्ति की पहचान प्रकट नहीं की गई है या उसे जोखिम में नहीं डाला गया है ।

8. कतिपय मामलों की प्रकटन से छूट – (1) किसी व्यक्ति से इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर ऐसी कोई सूचना देने या ऐसा कोई उत्तर देने या कोई दस्तावेज या जानकारी पेश करने या इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई अन्य सहायता देने की अपेक्षा नहीं की जाएगी या उसे प्राधिकृत नहीं किया जाएगा, यदि ऐसे प्रश्न या दस्तावेज या जानकारी से भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या नैतिकता के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या न्यायालय का अवमान, मानहानि या किसी अपराध के उद्दीपन के संबंध में, जिसमें –

(क) संघ सरकार के मंत्रिमंडल या मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो;

(ख) राज्य सरकार के मंत्रिमंडल या उस मंत्रिमंडल की किसी समिति की कार्यवाहियों का प्रकटन अंतर्वलित हो,

और इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, भारत सरकार के सचिव या राज्य सरकार के सचिव या केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार प्राधिकृत किसी प्राधिकारी द्वारा यह प्रमाणित करने के लिए जारी कोई प्रमाणपत्र, कि कोई जानकारी, उत्तर या किसी दस्तावेज का भाग खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट प्रकृति का है, आबद्धकर और निश्चायक होगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी व्यक्ति को, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए कोई ऐसा साक्ष्य देने या कोई ऐसा दस्तावेज पेश करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जिसके लिए उसे किसी न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में देने या पेश

करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता ।

9. समुचित तंत्र पर सक्षम प्राधिकारी का अधीक्षण – (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी, धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन उसे भेजे गए प्रकटनों के संबंध में विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए एक समुचित तंत्र सृजित करेगा ।

(2) सक्षम प्राधिकारी, प्रकटनों पर विचार करने या जांच करने के प्रयोजनों के लिए उपधारा (1) के अधीन सृजित तंत्र के कार्यकरण का अधीक्षण करेगा और समय-समय पर इसके उचित कार्यकरण के लिए ऐसे निदेश देगा, जो वह आवश्यक समझे ।

10. सक्षम प्राधिकारी द्वारा कतिपय मामलों में पुलिस प्राधिकारी आदि की सहायता लेना – संबंधित संगठन से सावधानीपूर्वक जांच करने या जानकारी अभिप्राप्त करने के प्रयोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन या पुलिस प्राधिकारी या किसी अन्य प्राधिकारी, जिसे आवश्यक समझा जाए, से सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्राप्त प्रकटन के अनुसरण में विहित समय के भीतर जांच पूरी करने के लिए सभी प्रकार की सहायता प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत होगा ।

अध्याय 5

प्रकटन करने वाले व्यक्तियों का संरक्षण

11. उत्पीड़न के विरुद्ध रक्षोपाय – (1) केन्द्रीय सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि कोई व्यक्ति या लोक सेवक, जिसने इस अधिनियम के अधीन प्रकटन किया है, मात्र इस आधार पर किन्हीं कार्यवाहियों के आरंभ द्वारा या अन्यथा उत्पीड़ित न किया जाए, कि ऐसे व्यक्ति या लोक सेवक ने इस अधिनियम के अधीन जांच में कोई प्रकटन किया था या जांच में सहायता दी थी ।

(2) यदि किसी व्यक्ति को इस आधार पर उत्पीड़ित किया जा रहा है या उत्पीड़ित किए जाने की संभावना है कि उसने इस अधिनियम के अधीन कोई शिकायत फाइल की थी या प्रकटन किया था या जांच में सहायता की थी, तो वह मामले में प्रतितोष के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष आवेदन फाइल कर सकेगा और ऐसा प्राधिकारी ऐसी कार्यवाही

करेगा, जो वह ठीक समझे और ऐसे व्यक्ति को उत्पीड़ित होने से संरक्षित करने या उसे उत्पीड़न से बचाने के लिए, यथास्थिति, संबद्ध लोक सेवक या लोक प्राधिकारी को उपयुक्त निदेश दे सकेगा :

परंतु सक्षम प्राधिकारी, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को कोई ऐसा निदेश देने से पूर्व, शिकायतकर्ता और, यथास्थिति, लोक प्राधिकारी या लोक सेवक को सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा :

परंतु यह और कि ऐसी किसी सुनवाई में यह साबित करने का भार लोक प्राधिकारी पर होगा कि लोक प्राधिकारी की ओर से अभिकथित कार्रवाई उत्पीड़न नहीं है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपधारा (2) के अधीन दिया गया प्रत्येक निदेश उस लोक सेवक या लोक प्राधिकारी के विरुद्ध आबद्धकर होगा, जिसके विरुद्ध उत्पीड़न का अभिकथन साबित हो गया है ।

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी अन्य बात के होते हुए भी किसी लोक सेवक के संबंध में उपधारा (2) के अधीन निदेश देने की शक्ति में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए प्रकटन करने वाले लोक सेवक के प्रत्यावर्तन के निदेश देने की शक्ति होगी ।

(5) ऐसा कोई व्यक्ति, जो उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी के निदेश का जानबूझकर अनुपालन नहीं करता है, ऐसी शास्ति के लिए, जो तीस हजार रुपए तक की हो सकेगी, दायी होगा ।

12. साक्षियों और अन्य व्यक्तियों का संरक्षण – (1) यदि सक्षम प्राधिकारी की शिकायतकर्ता या साक्षियों के आवेदन पर या एकत्रित की गई जानकारी के आधार पर यह राय है कि या तो शिकायतकर्ता या लोक सेवक या साक्षी या इस अधिनियम के अधीन जांच के लिए सहायता देने वाले किसी व्यक्ति को संरक्षण की आवश्यकता है तो सक्षम प्राधिकारी संबद्ध सरकारी प्राधिकारी (पुलिस सहित) को समुचित निदेश जारी करेगा, जो ऐसे शिकायतकर्ता या लोक सेवक या संबद्ध व्यक्तियों के संरक्षण के लिए अपने अभिकरणों के माध्यम से आवश्यक कदम उठाएगा ।

13. शिकायतकर्ता की पहचान का संरक्षण – (1) सक्षम प्राधिकारी तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए तब तक शिकायतकर्ता की पहचान और उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों या जानकारी को इस अधिनियम के अधीन यथा अपेक्षित छिपाएगा, जब तक स्वयं सक्षम प्राधिकारी द्वारा अन्यथा इस प्रकार विनिश्चय नहीं किया जाता या न्यायालय के आदेश के आधार पर इसका प्रकट किया जाना या पेश किया जाना आवश्यक नहीं हो जाता ।

14. अंतरिम आदेश पारित करने की शक्ति – (1) सक्षम प्राधिकारी, शिकायतकर्ता या लोक सेवक द्वारा प्रकटन करने के पश्चात् किसी भी समय, यदि उसकी यह राय है कि उक्त प्रयोजन के लिए किसी जांच के जारी रहने के दौरान किसी भ्रष्ट आचरण को रोकना आवश्यक है तो ऐसे अंतरिम आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ऐसे आचरण को तत्काल रोकने के लिए ठीक समझे ।

अध्याय 6

अपराध और शास्तियां

15. अपूर्ण या गलत या भ्रामक टिप्पणियां या स्पष्टीकरण या रिपोर्ट देने के लिए शास्ति - जहां सक्षम प्राधिकारी की, संगठन या संबंधित पदधारी द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायत पर रिपोर्ट या स्पष्टीकरण या धारा 5 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट रिपोर्ट की परीक्षा करते समय, यह राय है कि संगठन या संबंधित पदधारी ने, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है या जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषय-वस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, तो वह, –

(क) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना विनिर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है या असद्भाव से रिपोर्ट प्रस्तुत करने से इंकार किया है वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित करेगा, जो रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक प्रत्येक

दिन के लिए दो सौ पचास रुपए तक की हो सकेगी, तथापि, ऐसी शास्ति की कुल रकम पचास हजार रुपए से अधिक नहीं होगी;

(ख) जहां संगठन या संबंधित पदधारी ने, जानते हुए अपूर्ण, गलत या भ्रामक या मिथ्या रिपोर्ट दी है या ऐसे अभिलेख या सूचना को नष्ट किया है, जो प्रकटन की विषय-वस्तु थी या रिपोर्ट प्रस्तुत करने में किसी रीति में बाधा पहुंचाई है, वहां ऐसी शास्ति अधिरोपित कर सकेगा, जो पचास हजार रुपए तक की हो सकेगी :

परंतु किसी व्यक्ति पर तब तक कोई शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी, जब तक उसे सुनवाई का अवसर नहीं दे दिया गया हो ।

16. शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करने के लिए शास्ति – कोई व्यक्ति, जो उपेक्षापूर्वक या असद्भाव से किसी शिकायतकर्ता की पहचान प्रकट करता है, इस अधिनियम के अन्य उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसी अवधि के कारावास से, जो तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

17. मिथ्या या तुच्छ प्रकटन के लिए दंड – कोई व्यक्ति, जो असद्भाव से और जानते हुए कोई प्रकटन करता है कि यह गलत या मिथ्या या भ्रामक था तो वह ऐसी अवधि के कारावास से, दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

18. कतिपय मामलों में विभागाध्यक्ष के लिए दंड – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है, वहां विभागाध्यक्ष को तब तक अपराध का दोषी माना जाएगा और उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा, जब तक वह यह साबित नहीं कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या कि उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है और यह साबित हो जाता है कि अपराध किसी अधिकारी की

सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उसके द्वारा किया गया समझा जाता है तो ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्रवाई किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

19. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने के दायी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का दायी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और तद्नुसार दंडित किए जाने का दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

20. उच्च न्यायालय को अपील – धारा 14 या धारा 15 या धारा

16 के अधीन शास्ति अधिरोपित करने से संबंधित सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उस आदेश की तारीख से, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, साठ दिन की अवधि के भीतर उच्च न्यायालय को अपील कर सकेगा :

परंतु उच्च न्यायालय, साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी को समय के भीतर अपील करने से पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "उच्च न्यायालय" से ऐसा उच्च न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी अधिकारिता के भीतर वाद हेतुक उद्भूत हुआ है ।

21. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को, किसी ऐसे विषय की बाबत अधिकारिता नहीं होगी जिसको इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन सक्षम प्राधिकारी अवधारित करने के लिए सशक्त है, और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई व्यादेश मंजूर नहीं किया जाएगा ।

22. न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना – (1) कोई भी न्यायालय सक्षम प्राधिकारी या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी या व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के सिवाय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से निम्नतर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

23. प्रकटीकरणों पर रिपोर्ट – (1) सक्षम प्राधिकारी, ऐसी रीति में

जो विहित की जाए, अपने क्रियाकलापों को करने के बारे में एक समेकित वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसे, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, उसकी एक प्रति, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी :

परंतु जहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसी वार्षिक रिपोर्ट के तैयार करने के बारे में उपबंध किया गया है वहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा उक्त वार्षिक रिपोर्ट में उस अधिनियम के अधीन क्रियाकलापों को करने के बारे में पृथक् भाग अंतर्विष्ट किया जाएगा ।

24. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात की बाबत कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाहियां सक्षम प्राधिकारी या उसकी ओर से कार्य कर रहे किसी अधिकारी, कर्मचारी, अभिकरण या किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होंगी ।

25. केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन लिखित रूप में या समुचित इलेक्ट्रानिक साधनों द्वारा प्रकटीकरण की प्रक्रिया;

(ख) वह रीति, जिसमें और वह समय, जिसके भीतर धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की जाएगी;

(ग) ऐसे अतिरिक्त विषय, जिनकी बाबत सक्षम प्राधिकारी,

धारा 7 की उपधारा (2) के खंड (च) के अधीन सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा;

(घ) धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक रिपोर्ट का प्ररूप;

(ङ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

26. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए नियम बना सकेगी ।

27. विनियम बनाने की शक्ति – सक्षम प्राधिकारी, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे सभी विषयों के लिए, जिनके लिए इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने के प्रयोजनों के लिए उपबंध करना समीचीन है, उपबंध करने के लिए ऐसे विनियम बना सकेगा जो अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों से असंगत न हों ।

28. अधिसूचनाओं और नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और बनाया गया प्रत्येक नियम और सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम, जारी की जाने या बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखी जाएगी या रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस अधिसूचना या उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगी/होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह अधिसूचना या नियम अथवा विनियम नहीं बनाई, बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगी/जाएगा । तथापि, अधिसूचना या नियम अथवा विनियम के ऐसे परिवर्तन या बातिलकरण

से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

29. राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना और बनाए गए नियमों का राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी प्रत्येक अधिसूचना और राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम तथा सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम जारी किए जाने या बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी/रखा जाएगा ।

30. कठिनाइयां दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो, उस कठिनाई को दूर कर सकेगी :

परंतु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

31. निरसन और व्यावृत्ति – (1) तारीख 29 अप्रैल, 2004 के समसंख्यांक संकल्प द्वारा यथा संशोधित, भारत सरकार, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन (कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग) का संकल्प संख्यांक 371/12/2002-एवीडी-III, तारीख 21 अप्रैल, 2004 द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी उक्त संकल्प के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के अधीन की गई समझी जाएगी ।

Cover-III

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in